

॥ जय नानेश ॥

॥ जय महावीर ॥

॥ जय रामेश ॥

# श्रुत आराधक

भाग-3



: प्रकाशक :

**साधुमार्गी पब्लिकेशन**

(अन्तर्गत : श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ)

पुस्तक : श्रुत आराधक भाग-3

संस्करण : प्रथम-वर्ष 2017 (1500 प्रतियाँ)

मूल्य : रुपये 35/-

प्रकाशक : श्री अ.भा.सा. जैन संघ

पुस्तक प्राप्ति स्थान : प्रधान कार्यालय  
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ  
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, श्री जैन  
पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड, गंगाशहर,  
बीकानेर-334401 (राज.)  
फोन: 0151-2270261  
Email- absjsbkn@yahoo.co.in  
: धार्मिक एवं शैक्षणिक केन्द्र  
आचार्य श्री नानेश ध्यान केन्द्र  
राणा प्रतापनगर रोड, सुन्दरवास,  
उदयपुर-313001 (राज.)  
फोन: 0294-2490717, 2490306  
Email- asndkudaipur@gmail.com

## अनुक्रमणिका

क्र. विषय	पेज न.
1. श्री उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-1 ( पढमं विणयसुयं अज्झयणं )	4
2. श्री उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-2 ( बिइयं परीसहज्झयणं )	25
3. गुणस्थान स्वरूप	49
4. (अठाणु) 98 बोल की बासठिया	72
5. नवाचार्य जीवन	98
6. गृहस्थ धर्म भाग-1	220

## श्री उत्तराध्ययन सूत्र

॥ पढमं विणयसुयं अज्झयणं ॥1॥

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।  
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुत्विं सुणेहे मे॥1॥

आणा-णिहेसकरे, गुरूण-मुववाय-कारए।  
इंगियागारसंपन्ने, से विणीए त्ति वुच्चई॥2॥

**अन्वयार्थः-** (संजोगा) मातापितादि बाह्य संयोग और रागद्वेष कषायादि आभ्यन्तर संयोग से (विप्पमुक्कस्स) रहित (अणगारस्स) घर-बार के बन्धनों से मुक्त (भिक्खुणो) भिक्षा से निर्वाह करने वाले साधु का (विणयं) विनय (पाउकरिस्सामि) प्रकट करूँगा। अतः सावधान होकर (आणुपुत्विं) अनुक्रम से (मे) मुझ से (सुणेह) सुनो ॥1॥

**अन्वयार्थः-** (आणा-णिहेसकरे) गुरु आज्ञा को स्वीकार करने वाला (गुरूणं) गुरुजनों के (उववायकारए) समीप रहने वाला (इंगियागार संपन्ने) इंगित और आकार से गुरु के भाव को समझने वाला (से) साधु (विणीए त्ति) विनीत (वुच्चई) कहा जाता है ॥2॥

आणा-णिहेसकरे, गुरूण-मणुववाय-कारए।  
पडिणीए असंबुद्धे, अविणीए त्ति वुच्चई॥3॥

जहा सुणी पूइ-कणी, निक्कसिज्जइ सव्वसो।  
एवं दुस्सील-पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जइ॥4॥

कण-कुंडग चइत्ताणं, विट्ठं भुंजइ सूयरो।  
एवं सीलं चइत्ताणं, दुस्सीले रमई मिए॥5॥

**अन्वयार्थः-** (आणा-णिहेसकरे) गुरु आज्ञा न मानने वाला (गुरूणं) गुरु के (अणुववायकारए) समीप न रहने वाला (पडिणीए) उनके प्रतिकूल कार्य करने वाला तथा (असंबुद्धे) तत्त्वज्ञान रहित अविवेकी (से) साधु (अविणीए त्ति) अविनीत (वुच्चई) कहलाता है ॥3॥

**अन्वयार्थः-** (जहा) जैसे (पूइकणी) सड़े कानों वाली (सुणी) कुत्ती (सव्वसो) सब जगह से (निक्कसिज्जइ) निकाली जाती है, (एवं) इसी तरह (दुस्सील) दुष्ट स्वभाव वाला (पडिणीए) गुरुजनों के विरुद्ध आचरण करने वाला (मुहरी) वाचाल यानी बहुत बोलने वाला साधु सभी जगह से यानी गच्छ, संघ आदि से (निक्कसिज्जइ) निकाला जाता है ॥4॥

**अन्वयार्थः-** जैसे (सूयरो) सूअर (कण कुंडग) चावल के कूड़े को (चइत्ताणं) छोड़कर (विट्ठं) विष्टा (भुंजइ) खाता है (एवं) इसी प्रकार (मिए) मृग के समान अज्ञानी साधु भी (सीलं) शील-सदाचार को (चइत्ताणं) त्याग कर (दुस्सीले) दुःशील यानी दुष्ट आचार में (रमई) प्रसन्न रहता है ॥5॥

सुणिया भावं साणस्स, सूयरस्स नरस्स य।  
विणए ठवेज्ज अप्पाणं, इच्छंतो हिय-मप्पणो॥6॥  
तम्हा विणय-मेसेज्जा, सीलं पडि-लभेज्जओ।  
बुद्ध-पुत्त नियागट्ठी, न निक्कसिज्जइ कण्हुई॥7॥

**अन्वयार्थः-** (साणस्स) सड़े कानों वाली कुत्ती (य) और (सूयरस्स) सूअर के साथ (नरस्स) अविनीत मनुष्य की समानता के (भावं) दृष्टान्तों को (सुणिया) सुनकर (अप्पणो) अपना (हियं) ऐहिक और पारलौकिक हित (इच्छंतो) चाहने वाला व्यक्ति (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (विणए) विनय में (ठवेज्ज) स्थापित करे ॥6॥

**अन्वयार्थः-** (तम्हा) इसलिए अविनय के दोषों को जानकर (नियागट्ठी) मोक्ष के अभिलाषी (बुद्धपुत्त) गुरु महाराज के पुत्र के समान प्रिय साधु को (विणयं) विनय की (एसिज्जा) एषणा-आराधना करनी चाहिए (जओ) जिससे (सीलं) सदाचार की (पडिलभे) प्राप्ति हो ऐसा विनीत साधु (कण्हुई) कहीं से भी (न निक्कसिज्जइ) नहीं निकाला जाता अर्थात् वह कहीं पर अपमानित नहीं होता है ॥7॥

निसंते सियाऽमुहरी, बुद्धाणं अंतिए सया।  
अट्ट-जुत्ताणि सिक्खेज्जा, निरट्ठाणि उ वज्जए॥8॥  
अणुसासिओ ण कुप्पेज्जा, खंतिं सेवेज्ज पंडिए।  
खुड्ढेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए॥9॥

**अन्वयार्थः-** साधु को चाहिए कि वह (सया) सदा (निसंते) अतिशय शान्त और (अमुहरी) वाचालता रहित यानी कम बोलने वाला (सिया) हो तथा (बुद्धाणं) आचार्यादि के (अंतिए) समीप में (अट्टजुत्ताणि) मोक्ष अर्थ वाले आगमों को (सिक्खेज्जा) सीखे (उ) और (निरट्ठाणि) निरर्थक यानी मोक्ष अर्थ से रहित ज्योतिष, वैद्यक तथा स्त्री कथादि का (वज्जए) त्याग करे ॥8॥

**अन्वयार्थः-** (अणुसासिओ) यदि कभी गुरु महाराज कठोर वचनों से शिक्षा दें तो भी (पंडिए) बुद्धिमान् विनीत शिष्य को (ण कुप्पेज्जा) क्रोध न करना चाहिए किन्तु (खंतिं) क्षमा-सहनशीलता (सेवेज्ज) धारण करनी चाहिए (खुड्ढेहिं) दुःशील क्षुद्र व्यक्तियों के अर्थात् द्रव्य बाल और भाव बाल व्यक्तियों के (सह) साथ (संसग्गिं) संसर्ग-परिचय न करना चाहिए (च) और (हासं) हास्य तथा (कीडं) क्रीड़ा का सर्वथा (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥9॥

मा य चंडालियं कासी, बहुयं मा य आलवे।  
कालेण य अहिज्जिता, तओ झाइज्ज एगओ॥10॥  
आहच्च चंडालियं कट्टु, न निणहविज्ज कयाइ वि।  
कडं कडे त्ति भासेज्जा, अकडं नोकडे त्ति य॥11॥

**अन्वयार्थः-** ( चंडालियं ) साधु को क्रोधादिवश असत्य भाषण ( मा ) नहीं ( कासी ) करना चाहिए ( य ) और ( बहुयं ) अधिक भी ( मा ) नहीं ( आलवे ) बोलना चाहिए ( य ) और ( कालेण ) यथा समय ( अहिज्जिता ) शास्त्रादि का अध्ययन करके ( तओ ) उसके बाद ( एगओ ) अकेला यानी रागद्वेष रहित होकर एकान्त में ( झाइज्ज ) चिन्तन एवं मनन करे ॥10॥

**अन्वयार्थः-** ( आहच्च ) यदि कभी ( चंडालियं ) क्रोधादि वश असत्य वचन ( कट्टु ) मुख से निकल जाय तो उसे ( कयाइ वि ) कभी भी ( न निणहविज्ज ) छिपावे नहीं किन्तु ( कडं ) किये हुए को ( कडे त्ति ) किया है इस प्रकार ( य ) और ( अकडं ) नहीं किये हुए को ( नोकडे ) नहीं किया है ( त्ति ) इस प्रकार ( भासेज्जा ) कहे अर्थात् किये हुए दोष को सरल भाव से स्वीकार कर ले ॥11॥

मा गलियस्से व कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो।  
कसं व दट्ठु-माइन्ने, पावगं परिवज्जाए॥12॥  
अणासवा थूलवया कुसीला, मिउं पि चंडं पकरंति सीसा।  
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयं पि॥13॥

**अन्वयार्थः-** ( गलियस्से ) जैसे अडियल घोड़ा ( पुणो पुणो ) बार बार ( कसं ) चाबुक की मार खाये बिना सवार की इच्छानुसार प्रवृत्ति नहीं करता ( इव ) उसी तरह विनीत शिष्य को हर समय ( वयणं ) गुरु महाराज को कहने का ( मा इच्छे ) अवसर न देना चाहिए किन्तु ( व ) जिस प्रकार ( आइन्नेव ) जातिवंत विनीत घोड़ा ( कसं ) चाबुक को ( दट्ठुं ) देखते ही सवार की इच्छानुसार प्रवृत्ति करता है उसी तरह विनीत शिष्य को गुरु के इंगिताकार को समझ कर उनके मनोभाव के अनुसार प्रवृत्ति करनी चाहिए और ( पावगं ) पाप का सर्वथा ( परिवज्जाए ) त्याग कर देना चाहिए ॥12॥

**अन्वयार्थः-** ( अणासवा ) गुरु की आज्ञा को न मानने वाले ( थूलवया ) कठोर वचन कहने वाले तथा ( कुसीला ) दुष्ट आचार वाले ( सीसा ) अविनीत शिष्य ( मिउं पि ) शान्त स्वभाव वाले गुरु को भी ( चंडं ) क्रोधी ( पकरंति ) बना देते हैं किन्तु ( चित्ताणुया ) जो गुरु के चित्त के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले और ( लहु ) शीघ्र ही ( दक्खोववेया ) बिना विलम्ब गुरु के कार्य करने वाले हैं ( ते ) वे विनीत शिष्य ( हु ) निश्चय ही ( दुरासयं पि ) उग्र स्वभाव वाले गुरु को भी ( पसायए ) प्रसन्न कर लेते हैं ॥13॥

नापुट्टो वागरे किंचि, पुट्टो वा नालियं वए।  
 कोहं असच्चं कुवेज्जा, धारेज्ज पियमप्पियं॥14॥  
 अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।  
 अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य॥15॥  
 वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।  
 मा हं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि य॥16॥

**अन्वयार्थः-** (अपुट्टो) विनीत शिष्य बिना पूछे (किंचि) कुछ भी (न वागरे) न बोले (वा) और (पुट्टो) पूछने पर (अलियं) असत्य (न वए) न बोले। (कोहं) यदि कभी क्रोध उत्पन्न हो जाए तो उसके अशुभ फल को सोचकर (असच्चं) उसे असत्य अर्थात् निष्फल (कुवेज्जा) कर देवे तथा (अप्पियं) अप्रिय भी लगने वाले गुरु के कठोर वचन को हितकारी जानकर (पियं) प्रिय समझे एवं (धारेज्ज) धारण करे ॥14॥

**अन्वयार्थः-** (अप्पा) आत्मा अर्थात् मन और इन्द्रियों का (चेव) ही (दमेयव्वो) दमन करना चाहिए (खलु) क्योंकि (अप्पा) आत्मा का (दुद्दमो) दमन करना बड़ा कठिन है (अप्पा) आत्मा को (दंतो) दमन करने वाला (अस्सिं) इस (लोए) लोक में (य) और (परत्थ) परलोक में (सुही) सुखी (होइ) होता है ॥15॥

**अन्वयार्थः-** (परेहिं) परवश होकर दूसरों से (वहेहिं) वध (य) और (बंधणेहिं) बन्धनों द्वारा (मा दम्मंतो) दमन किये जाने की अपेक्षा (अहं) मुझे अपनी इच्छा से ही (तवेण) तप (य) और (संजमेण) संयम द्वारा (मे) अपनी (अप्पा) आत्मा का (दंतो) दमन करना (वरं) श्रेष्ठ है ॥16॥

पडिणीयं च बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मणा।  
 आवी वा जइ वा रहस्से, नेव कुज्जा कयाइ वि॥17॥  
 न पक्खओ न पुरओ, णेव किच्चाण पिट्ठओ।  
 न जुंजे ऊरुणा ऊरुं, सयणे णो पडिस्सुणे॥18॥  
 नेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिंडं च संजए।  
 पाए पसारिए वा वि, न चिट्ठे गुरुणंतिए॥19॥

**अन्वयार्थः-** विनीत शिष्य को चाहिए कि वह (आवी वा) प्रगट में- लोगों के सामने (जइ वा) अथवा (रहस्से) एकान्त में (वाया) वचन से (अदुव) और (कम्मणा) कार्य से (कयाइ वि) कभी भी (बुद्धाणं) गुरु महाराज के (पडिणीयं) विपरीत आचरण (नेव) नहीं (कुज्जा) करे ॥17॥

**अन्वयार्थः-** विनीत शिष्य को चाहिए कि वह (किच्चाण) आचार्य महाराज के (न पक्खओ) अड़ता हुआ पास में बराबर न बैठे (न पुरओ) उनके आगे भी न बैठे और (णेव पिट्ठओ) पीछे भी अविनीतपन से न बैठे तथा (न) गुरु महाराज के इतना नजदीक भी न बैठे कि (ऊरुणा) अपने घुटने से (ऊरुं) उनके घुटने का (जुंजे) स्पर्श हो तथा (सयणे) शय्या पर सोते या बैठे हुए ही (णो पडिस्सुणे) गुरु महाराज के वचनों को न सुने किन्तु आसन से नीचे उतरकर उत्तर देवे ॥18॥

**अन्वयार्थः-** (संजए) विनीत साधु (पल्हत्थियं) पलाठी मारकर (च) अथवा (पक्खपिंडं) पक्षपिंड करके (नेव कुज्जा) न बैठे (वा वि) और (गुरुणंतिए) गुरु महाराज के सामने (पाए) पैर (पसारिए) फैलाकर भी (न चिट्ठे) न बैठे ॥19॥

आयरिएहिं वाहितो, तुसिणीओ ण कयाइ वि।  
पसायपेही नियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुं सया॥20॥  
आलवंते लवंते वा, न निसीएज्ज कयाइ वि।  
चइऊण-मासणं धीरो, जओ जत्तं पडिस्सुणे॥21॥

**अन्वयार्थः-** (आयरिएहिं) आचार्य महाराज द्वारा (वाहितो) बुलाया जाने पर-विनीत शिष्य को चाहिये कि वह- (कयाइ वि) कभी भी (तुसिणीओ) चुपचाप बैठा (न) न रहे किन्तु (पसायपेही) गुरु की कृपा चाहने वाला (नियागट्ठी) मोक्षार्थी साधु (सया) हमेशा (गुरुं) गुरु महाराज के समीप (उवचिट्ठे) विनय के साथ उपस्थित होवे ॥20॥

**अन्वयार्थः-** (आलवंते) गुरु महाराज के एक बार बुलाने पर (वा) अथवा (लवंते) बार-बार बुलाने पर (कयाइ वि) कभी भी (न निसीएज्ज) बैठा न रहे किन्तु (धीरो) विनीत-धैर्यशाली साधु (आसणं) आसन (चइऊणं) छोड़कर (जत्तं) गुरु महाराज के वचनों को यतनापूर्वक (जओ) सावधान होकर (पडिस्सुणे) सुने ॥21॥

आसणगओ न पुच्छेज्जा, नेव सेज्जागओ कयाइ वि।  
आगम्मुकुडुओ संतो, पुच्छेज्जा पंजलीउडो॥22॥  
एवं विणय-जुत्तस्स, सुत्तं अत्थं च तदुभयं।  
पुच्छ-माणस्स सीसस्स, वागरेज्ज जहासुयं॥23॥  
मुसं परिहरे भिक्खू, न य ओहारिणिं वए।  
भासादोसं परिहरे, मायं च वज्जए सया॥24॥

**अन्वयार्थः-** गुरु महाराज से कुछ पूछना हो तो शिष्य को चाहिये कि वह (आसणगओ) आसन पर बैठा हुआ (कया) कभी (न) नहीं (पुच्छेज्जा) पूछे और (न) न (सेज्जागओ) शय्या पर रहा हुआ (एव) ही पूछे, किन्तु (आगम्म) गुरु के समीप आकर (उक्कुडुओ संतो) उत्कटुक आसन से यानी घुटनों के बल बैठकर (पंजलीउडो) विनय पूर्वक हाथ जोड़कर (पुच्छेज्जा) पूछे ॥22॥

**अन्वयार्थः-** गुरु को चाहिए कि (एवं) इस प्रकार (विणयजुत्तस्स) विनय से युक्त-विनय की आराधना करने वाले (सीसस्स) शिष्य के (पुच्छमाणस्स) पूछने पर (सुत्तं) सूत्र (अत्थं) अर्थ (च) और (तदुभयं) सूत्र अर्थ दोनों (जहासुयं) जैसा गुरु महाराज से सुना हो उसी प्रकार (वागरेज्ज) कहे ॥23॥

**अन्वयार्थः-** (भिक्खू) साधु (सया) सदा (मुसं) झूठ का (परिहरे) सब प्रकार से त्याग करे (य) और (ओहारिणिं) निश्चयकारिणी भाषा (न वए) न बोले (भासादोसं) भाषा के सावद्य आदि दोषों को (परिहरे) छोड़े (च) और (मायं) माया एवं क्रोधादि का (वज्जए) त्याग करे ॥24॥

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, न निरट्ठं न मम्मयं।  
 अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्संतरेण वा॥25॥  
 समरेसु अगारेसु, संधीसु य महापहे।  
 एगो एगित्थिए सद्धिं, नेव चिट्ठे न संलवे॥26॥  
 जं मे बुद्धाऽणुसासंति, सीएण फरुसेण वा।  
 मम लाभो त्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे॥27॥

**अन्वयार्थः-** ( पुट्ठो ) कोई बात पूछने पर साधु ( अप्पणट्ठा ) अपने लिये ( वा ) अथवा ( परट्ठा ) दूसरे के लिये या ( उभयस्स ) अपने और दूसरे दोनों के लिये ( अंतरेण वा ) सप्रयोजन अथवा निष्प्रयोजन ( सावज्जं ) सावद्य भाषा ( न लवेज्ज ) न बोले ( न निरट्ठं ) निरर्थक वचन न कहे और ( न मम्मयं ) मर्मभेदी वचन भी न कहे ॥25॥

**अन्वयार्थः-** ( समरेसु ) लोहारशाला में ( अगारेसु ) सूने घरों में ( संधीसु ) दो घरों के बीच में ( य ) और ( महापहे ) राजमार्ग में ( एगो ) अकेला साधु ( एगित्थिए ) अकेली स्त्री के ( सद्धिं ) साथ ( नेव चिट्ठे ) न खड़ा रहे और ( न संलवे ) न बातचीत ही करे ॥26॥

**अन्वयार्थः-** ( बुद्धा ) आचार्यादि गुरुजन ( मे ) मुझे ( सीएण ) कोमल ( वा ) अथवा ( फरुसेण ) कठोर वचनों से ( जं ) जो ( अणुसासंति ) शिक्षा देते हैं इसमें ( मम ) मेरा ही ( लाभो त्ति ) लाभ है इस प्रकार ( पेहाए ) विचार कर शिष्य को चाहिए कि वह ( पयओ ) सावधान होकर ( तं ) उस शिक्षा को ( पडिस्सुणे ) अंगीकार करे ॥27॥

अणु-सासण-मोवायं, दुक्कडस्स य चोयणं।  
 हियं तं मन्नई पन्नो, वेसं होइ असाहुणो॥28॥  
 हियं विगय-भया बुद्धा, फरुसं पि अणुसासणं।  
 वेसं तं होइ मूढाणं, खंति-सोहिकरं पयं॥29॥

**अन्वयार्थः-** ( ओवायं ) कोमल तथा कठोर शब्द रूपी उपाय से दी गई ( अणुसासणं ) गुरुजनों की शिक्षा को ( य ) और ( दुक्कडस्स ) पापकार्यों से निवर्तने के लिए ( चोयणं ) की गई प्रेरणा को ( पन्नो ) बुद्धिमान् विनीत शिष्य ( हियं ) हितकारी ( मन्नई ) मानता है किन्तु ( असाहुणो ) अविनीत शिष्य के लिये ( तं ) वही शिक्षा ( वेस्सं ) द्वेषोत्पादक ( होइ ) होती है ॥28॥

**अन्वयार्थः-** ( विगयभया ) सात भय से रहित ( बुद्धा ) तत्त्वज्ञानी शिष्य ( खंति-सोहिकरं ) क्षमा और शुद्धि को करने वाले तथा ( पयं ) ज्ञानादि गुणों के स्थान रूप ( फरुसं पि ) कठोर भी ( अणुसासणं ) गुरु महाराज की शिक्षा को ( हियं ) हितकारी मानते हैं किन्तु ( तं ) वही शिक्षा ( मूढाणं ) अज्ञानी-अविनीत शिष्यों के लिये ( वेसं ) द्वेष उत्पन्न करने वाली ( होइ ) होती है ॥29॥



आसणे उव-चिट्ठेज्जा, अणुच्चेऽकुक्कुए थिरे।  
 अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई, निसीएज्ज-ऽप्पकुक्कुए॥30॥  
 कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।  
 अकालं च विवज्जेता, काले कालं समायरे॥31॥

**अन्वयार्थः-** शिष्य को चाहिये कि (अणुच्चे) गुरु महाराज से नीचे तथा अल्प मूल्य वाले (अकुए) चरचर शब्द न करने वाले (थिरे) स्थिर (आसणे) आसन पर (अप्पकुक्कुए) हाथ पैर आदि को न हिलाते हुए (उवचिट्ठेज्जा) बैठे और (अप्पुट्ठाई) बिना प्रयोजन (निरुट्ठाई निसीएज्ज) उठे बैठे नहीं एवं प्रयोजन होने पर भी बार-बार उठे बैठे नहीं ॥30॥

**अन्वयार्थः-** (भिक्खू) साधु (कालेण) समय पर (निक्खमे) भिक्षादि के लिये निकले (य) और (कालेण) समय हो जाने पर (पडिक्कमे) वापिस लौट आवे (अकालं) अकाल को (विवज्जेता) वर्जकर (काले) नियत समय पर (कालं) उस काल की क्रिया का (समायरे) आचरण करे ॥31॥

परिवाडीए न चिट्ठेज्जा, भिक्खू दत्तेसणं चरे।  
 पडि-रूवेण एसित्ता, मियं कालेण भक्खए॥32॥  
 नाइदूर-मणासण्णे, णाण्णेसिं चक्खु-फासओ।  
 एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा, लंघित्ता तं णाइक्कमे॥33॥

**अन्वयार्थः-** (भिक्खू) साधु (परिवाडीए) जहाँ जीमणवार की पंक्ति बैठी हो वहाँ पर (न चिट्ठेज्जा) खड़ा न रहे किन्तु पृथक्-पृथक् घरों से (दत्तेसणं) दाता द्वारा दिये हुए शुद्ध आहार की (चरे) गवेषणा करे (पडिरूवेण) अनगारोचित योग्य रीति से नियमानुसार (एसित्ता) आहार की गवेषणा कर (कालेण) आहार करने के समय (मियं) परिमित आहार का (भक्खए) भोजन करे ॥32॥

**अन्वयार्थः-** गृहस्थ के घर पर भिखारी लोग खड़े हों तो (भत्तट्ठा) गोचरी गया हुआ साधु (तं) उनको (लंघित्ता) लांघकर (न अइक्कमे) गृहस्थ के घर में प्रवेश न करे किन्तु वहाँ से (नाइदूर) न अतिदूर और (अणासण्णे) न बहुत नजदीक (अण्णेसिं) जहाँ दाता और भिखारी दोनों की (न चक्खुफासओ) दृष्टि न पड़ती हो वहाँ (एगो) रागद्वेष न करता हुआ (चिट्ठेज्ज) यतनापूर्वक खड़ा रहे ॥33॥

नाइउच्चे व णीए वा, नासन्ने नाइदूरओ।  
 फासुयं परकडं पिंडं, पडिगाहेज्ज संजए॥34॥  
 अप्प-पाणेऽप्प-बीयम्मि, पडिच्छन्नम्मि संवुडे।  
 समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं॥35॥

**अन्वयार्थः-** (नाइउच्चे) दाता से न अधिक ऊँचे स्थान पर (वा) और (व णीए) न अधिक नीचे स्थान पर इसी प्रकार (नासन्ने) न अधिक नजदीक और (नाइदूरओ) न अधिक दूर खड़े होकर भिक्षा ग्रहण करे किन्तु (संजए) संयती साधु उचित स्थान पर खड़ा होकर (परकडं) गृहस्थ के लिए बनाये हुए (फासुयं) प्रासुक (पिंडं) आहार को (पडिगाहेज्ज) ग्रहण करे ॥34॥

**अन्वयार्थः-** (अप्पपाणे) द्वीन्द्रियादि प्राणियों से रहित (अप्पबीयम्मि) शाली आदि बीज रहित, (पडिच्छन्नम्मि) ऊपर से ढके हुए और (संवुडे) चारों ओर से घिरे हुए स्थान में (संजए) संयमी साधु (समयं) दूसरे साधुओं के साथ (जयं) यतनापूर्वक (अपरिसाडियं) आहार का कण न गिराते हुए (भुंजे) उपभोग करे ॥35॥

सु-कडित्ति सु-पक्कित्ति, सु-च्छिन्ने सु-हडे मडे।  
 सु-निट्ठिए सु-लट्ठित्ति, सावज्जं वज्जए मुणी॥36॥  
 रमए पंडिए सासं, हयं भदं व वाहए।  
 बालं सम्मइ सासंतो, गलिअस्सं व वाहए॥37॥

**अन्वयार्थः-** आहार करते समय साधु इस प्रकार न बोले (सुकडित्ति) अच्छा बनाया (सुपक्कित्ति) अच्छा पकाया शाकादि (सुच्छिन्ने) शाक पत्रादि का अच्छा छेदन किया (सुहडे) शाकादि के तीखेपन आदि को अच्छा दूर किया (मडे) सत्तू आदि में घृतादि का खूब समावेश किया (सुनिट्ठिए) यह भोजन रसोत्कर्षता को प्राप्त है (सुलट्ठित्ति) यह आहार रसादि सभी प्रकार से सुन्दर है इस प्रकार (मुणी) मुनि (सावज्जं) सावद्य वचनों का (वज्जए) त्याग करे अर्थात् सावद्य वचन न बोले ॥36॥

**अन्वयार्थः-** (व) जैसे (भदं) भद्र (हयं) घोड़े को (सासं) सिखाता हुआ (वाहए) सवार प्रसन्न होता है उसी तरह (पंडिए) विनीत शिष्यों को शिक्षा देता हुआ गुरु (रमए) प्रसन्न होता है और (व) जैसे (गलिअस्सं) दुष्ट घोड़े को (सासंतो) शिक्षा देता हुआ (वाहए) सवार खेदित होता है उसी तरह (बालं) अविनीत शिष्य को शिक्षा देता हुआ गुरु (सम्मइ) खेदित होता है ॥37॥

खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे।  
कल्लाण-मणु-सासंतो, पाव-दिट्ठि त्ति मन्नइ॥38॥  
पुत्तो मे भाइ णाइ त्ति, साहू कल्लाण मन्नइ।  
पावदिट्ठि उ अप्पाणं, सासं दासि त्ति मन्नइ॥39॥

**अन्वयार्थः-** (कल्लाणं) कल्याणकारी (अणुसासंतो) शिक्षा देने पर (पावदिट्ठि) पाप दृष्टि अविनीत शिष्य (त्ति) इस तरह (मन्नइ) मानता है जैसे कि (मे) मेरे लिये (खड्डुया) ये वचन ठोले रूप हैं (मे) मेरे लिए (चवेडा) ये थप्पड़ रूप हैं (य) और (मे) मेरे लिये (अक्कोसा) ये गाली रूप (य) तथा (वहा) वध रूप हैं ॥38॥

**अन्वयार्थः-** (साहू) विनीत साधु (सासं) गुरु महाराज की शिक्षा को (कल्लाण) कल्याणकारी एवं हितकारी (मन्नइ) मानता है और ऐसा समझता है कि गुरु महाराज (मे) मुझे (पुत्तो) अपना पुत्र (भाय) भाई (णाइ त्ति) स्वजन मानकर शिक्षा देते हैं (उ) किन्तु (पावदिट्ठि) पापदृष्टि अविनीत शिष्य को शिक्षा देने पर वह (अप्पाणं) अपने आपको (दासि त्ति) दास के समान (मन्नइ) मानता है ॥39॥

न कोवए आयरियं, अप्पाणं पि न कोवए।  
बुद्धोवघाई न सिया, न सिया तोत्त-गवेसए॥40॥  
आयरियं कु वियं नच्चा, पत्तिएण पसायए।  
विज्झवेज्ज पंजलीउडो, वएज्ज ण पुणो त्ति य॥41॥

**अन्वयार्थः-** विनीत शिष्य को चाहिए कि वह (आयरियं) आचार्य महाराज को (न कोवए) कुपित नहीं करे (अप्पाणं पि) अपने आपको भी (न कोवए) कुपित नहीं करे (बुद्धोवघाई) आचार्य की उपघात करने वाला (न सिया) न हो (तोत्तगवेसए) छिद्रान्वेषी- उनके दोषों को देखने वाला भी (न सिया) न हो ॥40॥

**अन्वयार्थः-** (आयरियं) आचार्य महाराज को (कुवियं) कुपित (नच्चा) जानकर (पत्तिएण) विश्वासोत्पादक विनय युक्त वचन कहकर उन्हें (पसायए) प्रसन्न करे और (विज्झवेज्ज) उनके क्रोध को शांत करे (य) तथा (पंजलीउडो) हाथ जोड़कर अपने अपराध की क्षमा मांगे और (वएज्ज) कहे कि हे भगवन्! (पुणो) फिर (त्ति) ऐसा अपराध (न) कभी नहीं करूँगा ॥41॥

धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धेहिं आयरियं सया।  
 तमायरंतो ववहारं, गरहं नाभिगच्छई॥42॥  
 मणोगयं वक्कगयं, जाणित्तायरियस्स उ।  
 तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए॥43॥  
 वित्ते अचोइए निच्चं, खिप्पं हवइ सुचोइए।  
 जहोवइट्ठं सुकयं, किच्चाइं कुव्वई सया॥44॥

**अन्वयार्थः-** ( बुद्धेहिं ) तत्त्वज्ञ मुनियों ने ( सया ) सदा ( धम्मज्जियं ) क्षमा आदि यतिधर्म युक्त ( ववहारं ) व्यवहार का ( आयरियं ) सेवन किया है ( च ) उस ( ववहारं ) पाप कर्म हटाने वाले व्यवहार का ( आयरंतो ) आचरण करने वाला व्यक्ति ( गरहं ) निन्दा को ( नाभिगच्छई ) प्राप्त नहीं होता है ॥42॥

**अन्वयार्थः-** ( आयरियस्स ) आचार्य महाराज के ( मणोगयं ) मन में रहे हुए अभिप्राय को ( जाणित्ता ) जानकर ( उ ) और ( वक्कगयं ) उनके वचनों को सुनकर ( तं ) उसे ( वायाए ) वाणी द्वारा ( परिगिज्झ ) स्वीकार करे और ( कम्मुणा ) कार्य द्वारा ( उववायए ) उसे आचरण में लावे ॥43॥

**अन्वयार्थः-** ( वित्ते ) विनयवान् शिष्य ( निच्चं ) सदा ( अचोइए ) गुरु के प्रेरणा किये बिना ही उनके कार्य को करता है और ( सुचोइए ) गुरु महाराज के सम्यक् प्रेरणा करने पर वह बुरा नहीं मानता किन्तु ( खिप्पं ) शीघ्र ही ( हवइ ) उस कार्य में प्रवृत्ति करता है तथा ( सया ) हमेशा ( जहोवइट्ठं ) गुरु महाराज के कहे अनुसार ( सुकयं ) अच्छी तरह ( किच्चाइं ) कार्य ( कुव्वई ) करता है ॥44॥

नच्चा नमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए।  
 हवइ किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा॥45॥  
 पुज्जा जस्स पसीयंति, संबुद्धा पुव्वसंथुया।  
 पसन्ना लाभइस्संति, विउलं अट्ठियं सुयं॥46॥

**अन्वयार्थः-** ऊपर बतलाये हुए विनय के स्वरूप को ( नच्चा ) जानकर ( मेहावी ) बुद्धिमान् व्यक्ति ( नमइ ) नम्र बनता है ( लोए ) लोक में ( से ) उसकी ( कित्ती ) कीर्ति ( जायए ) होती है और ( जहा ) जिस प्रकार ( जगई ) पृथ्वी ( भूयाणं ) सब प्राणियों के लिए आधार रूप है उसी प्रकार वह भी ( किच्चाणं ) सभी शुभ अनुष्ठानों का एवं सद्गुणों का ( सरणं ) आधार रूप ( हवइ ) होता है ॥45॥

**अन्वयार्थः-** ( संबुद्धा ) तत्त्वज्ञानी ( पुव्वसंथुया ) पहले से ही शिष्य के विनयादि गुणों से परिचित ( पुज्जा ) पूज्य आचार्य महाराज ( जस्स ) जिस शिष्य पर ( पसीयंति ) प्रसन्न होते हैं उसे ( पसन्ना ) प्रसन्न हुए वे ( अट्ठियं ) मोक्ष अर्थ वाले ( विउलं ) विपुल-विस्तृत ( सुयं ) श्रुतज्ञान का ( लाभइस्संति ) लाभ देते हैं ॥46॥

स पुञ्जसत्थे सुविणीय-संसए, मणोरुई चिट्ठइ कम्मसंपया ।  
तवो-समायारि-समाहिसंवुडे, महज्जुई पंच वयाइं पालिया ॥47॥

स देव-गंधव्व-मणुस्सपूइए, चइत्तु देहं मल-पंक-पुव्वयं।  
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्डिए॥48॥  
त्ति बेमि॥

॥ विणयसुयं णामं पढमं अज्झयणं समत्तं ॥1॥

**अन्वयार्थः-** ( पुञ्जसत्थे ) विनय की आराधना करने से शिष्य का शास्त्र ज्ञान प्रशंसनीय और ( सुविणीयसंसए ) संशय रहित होता है ( स ) वह विनीत शिष्य ( मणोरुई ) गुरु की रुचि के अनुसार ( चिट्ठइ ) प्रवृत्ति करता है और ( कम्मसंपया ) दस प्रकार की समाचारी से सम्पन्न होता है ( तवोसमायारी समाहि संवुडे ) तप, समाचारी और समाधि से संवर वाला होकर तथा ( पंच ) पाँच ( वयाइं ) महाव्रतों का ( पालिया ) भली प्रकार पालन कर ( महज्जुई ) महान् तेज वाला होता है ॥47॥

**अन्वयार्थः-** ( देवगंधव्व मणुस्स पूइए ) देवता, गन्धर्व और मनुष्यों से पूजित ( स ) वह विनीत शिष्य ( मलपंकपुव्वयं ) मल मूत्रादि से भरे हुए इस ( देहं ) अपवित्र शरीर को ( चइत्तु ) छोड़कर इसी जन्म में ( सासए ) शाश्वत ( सिद्धे ) सिद्ध ( हवइ ) हो जाता है ( वा ) अथवा यदि ( अप्परए ) कुछ कर्म बाकी रह जाय तो ( महिड्डिए ) महती ऋद्धि वाला ( देवे ) देवता होता है॥48॥ ( त्ति बेमि ) श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्यमन् जम्बू! जैसा मैंने भगवान् महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही मैं तुझे कहता हूँ ॥48॥

॥ विनयश्रुत नामक प्रथम अध्ययन समाप्त॥

विइयं परीसहऽज्झयणं ॥2॥

सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं। इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया। जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विनिहण्णेज्जा।

**अन्वयार्थः-** श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि ( आउसं ) हे आयुष्यमन् जम्बू! ( मे ) मैंने ( सुयं ) सुना है ( तेणं ) उन ( भगवया ) भगवान् ने ( एवं ) इस प्रकार ( अक्खायं ) कहा है ( इह खलु ) यहाँ जिन प्रवचन में ( कासवेणं ) काश्यप गोत्रीय ( समणेणं ) श्रमण ( भगवया ) भगवान् ( महावीरेणं ) महावीर स्वामी ने ( बावीसं ) बाईस ( परीसहा ) परीषह ( पवेइया ) कहे हैं ( जे ) जिन्हें ( सोच्चा ) सुनकर ( नच्चा ) उनके स्वरूप को जानकर ( जिच्चा ) अभ्यस्त/परिचित कर और ( अभिभूय ) जीतकर ( भिक्खू ) साधु ( भिक्खायरियाए ) भिक्षाचर्या में ( परिव्वयंतो ) जाते हुए ( पुट्ठो ) उन परीषहों के उपस्थित होने पर ( नो विनिहण्णेज्जा ) संयम से विचलित न होवे।

कयरे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विनिहण्णेज्जा ?

**अन्वयार्थः-** शिष्य पूछता है कि हे भगवन्! ( ते ) वे ( बावीसं ) बाईस ( परीसहा ) परीषह ( कयरे खलु ) कौन से हैं जिन्हें ( कासवेणं ) काश्यप गोत्रीय ( समणेणं ) श्रमण ( भगवया ) भगवान् ( महावीरेणं ) महावीर स्वामी ने ( पवेइया ) कहा है ( जे ) जिन्हें ( सोच्चा ) सुनकर, जिनके स्वरूप को ( नच्चा ) जानकर ( जिच्चा ) अभ्यस्त कर और ( अभिभूय ) जीतकर ( भिक्खू ) साधु ( भिक्खायरियाए ) भिक्षाचर्या में ( परिव्वयंतो ) जाते हुए ( पुट्ठो ) परीषहों के उपस्थित होने पर ( नो विनिहण्णेज्जा ) संयम से विचलित न होवे।

इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विनिहण्णेज्जा तं जहा-दिगिंछा-परीसहे पिवासा-परीसहे सीय-परीसहे उसिण-परीसहे दंस-मसय-परीसहे अचेल-परीसहे अरइ-

**अन्वयार्थः-** गुरु महाराज फरमाते हैं कि हे शिष्य! ( कासवेणं ) काश्यप गोत्रीय ( समणेणं ) श्रमण ( भगवया ) भगवान् ( महावीरेणं ) महावीर स्वामी द्वारा ( पवेइया ) कहे हुए ( ते ) वे ( बावीसं ) बाईस ( परीसहा ) परीषह ( इमे खलु ) ये हैं ( जे ) जिन्हें ( सोच्चा ) सुनकर ( नच्चा ) जानकर ( जिच्चा ) अभ्यस्त कर और ( अभिभूय ) जीतकर ( भिक्खू ) साधु ( भिक्खायरियाए ) भिक्षाचर्या में ( परिव्वयंतो ) जाते हुए ( पुट्ठो ) परीषहों के उपस्थित होने पर ( नो विनिहण्णेज्जा ) संयम से विचलित न होवे।

**अन्वयार्थः-** ( तं जहा ) वे 22 परीषह इस प्रकार हैं ( दिगिंछा परीसहे ) क्षुधा-भूख का परीषह ( पिवासा परीसहे ) प्यास का परीषह ( सीय परीसहे ) शीत-ठंड का परीषह ( उसिण परीसहे ) उष्ण परीषह यानी गर्मी का परीषह ( दंसमसय परीसहे ) दंशमशक परीषह यानी डांस मच्छर आदि से होने वाला परीषह ( अचेल परीसहे ) वस्त्र के अभाव से अथवा जीर्ण, अल्प वस्त्रों से होने वाला परीषह ( अरइ परीसहे )

परीसहे इत्थी-परीसहे चरिया-परीसहे निसीहिया-परीसहे सेज्जा-परीसहे अक्कोस-परीसहे वह-परीसहे जायणा-परीसहे अलाभ-परीसहे रोग-परीसहे तणफास-परीसहे जल्ल-परीसहे सक्कार-पुरक्कार-परीसहे पन्ना-परीसहे अन्नाण परीसहे दंसण-परीसहे।

अरति अर्थात् संयम में रति न होने का परीषह ( **इत्थी परिसहे** ) स्त्री का परीषह ( **चरिया परिसहे** ) चर्या परीषह- विहार का परीषह ( **निसीहिया परीसहे** ) निषद्या परीषह- एकान्त स्थान में बैठने का परीषह ( **सेज्जा परीसहे** ) शय्या- रहने के स्थान की प्रतिकूलता से होने वाला परीषह ( **अक्कोस परीसहे** ) आक्रोश यानी गाली आदि कठोर वचनों का परीषह ( **वह परीसहे** ) वध परीषह ( **जायणा परीसहे** ) याचना परीषह ( **अलाभ परीसहे** ) अलाभ यानी भिक्षा में आहारादि न मिलने का परीषह ( **रोग परीसहे** ) रोग परीषह ( **तणफास परीसहे** ) तृष्ण स्पर्श का परीषह ( **जल्ल परीसहे** ) मैल का परीषह ( **सक्कार पुरक्कार परीसहे** ) सत्कार पुरस्कार परीषह-सत्कार एवं मान प्रतिष्ठा मिलने पर हर्षित न होना और न मिलने पर खिन्न न होना ( **पन्ना परीसहे** ) प्रज्ञा परीषह ( **अन्नाण परीसहे** ) अज्ञान परीषह ( **दंसण परीसहे** ) दर्शन यानी सम्यक्त्व परीषह।

परीसहाणं पविभत्ती, कासवेणं पवेइया।  
तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥1॥  
दिगिंछा-परिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामवं।  
न छिंदे न छिंदावए, न पए न पयावए॥2॥  
काली-पव्वंग-संकासे, किसे धमणि-संतए।  
मायन्ने असण-पाणस्स, अदीण-मणसो चरे॥3॥

अन्वयार्थः- ( **कासवेणं** ) काश्यप गोत्रीय भगवान महावीर स्वामी ने ( **परीसहाणं** ) परीषहों का जो ( **पविभत्ती** ) विभाग ( **पवेइया** ) फरमाया है ( **तं** ) उसे ( **भे** ) आप लोगों से ( **उदाहरिस्सामि** ) कहूँगा ( **आणुपुव्विं** ) क्रमशः ( **मे** ) मुझ से ( **सुणेह** ) सुनो ॥1॥

अन्वयार्थः- ( **दिगिंछा परिगए देहे** ) भूख से शरीर के पीड़ित होने पर भी ( **थामवं** ) संयम बल वाले ( **तवस्सी** ) तपस्वी ( **भिक्खू** ) साधु को चाहिए कि वह ( **न छिंदे** ) फलादि का स्वयं छेदन न करे ( **न छिंदावए** ) दूसरों से छेदन न करावे ( **न पए** ) अन्न आदि स्वयं न पकावे ( **न पयावए** ) दूसरों से न पकवावे ॥2॥

अन्वयार्थः- ( **काली पव्वंग संकासे** ) क्षुधा परीषह से सूख कर शरीर चाहे काकजंघा के समान दुर्बल हो जाए, ( **धमणि संतए** ) नसें दिखने लग जाए ( **किसे** ) शरीर अत्यन्त कृश एवं दुर्बल हो जाए तो भी ( **असण पाणस्स** ) आहार पानी की ( **मायन्ने** ) मर्यादा को जानने वाला साधु ( **अदीण मणसो** ) मन में दीनता के भाव न लाता हुआ दृढ़ता के साथ ( **चरे** ) संयम मार्ग में विचरे ॥3॥

तओ पुट्टो पिवासाए, दोगुंछी लज्ज-संजए।  
सीओदगं ण सेवेज्जा, वियडस्सेसणं चरे॥4॥

छिन्ना-वाएसु पंथेसु, आउरे सुपिवासिए।  
परिसुक्कमुहादीणे, तं तितिक्खे परीसहं॥5॥

**अन्वयार्थः-** (तओ) क्षुधा परीषह के बाद तृषा परीषह का वर्णन किया जाता है (दोगुंछी) अनाचार सेवन से घृणा करने वाला (लज्ज संजए) लज्जा और संयम वाला साधु (पिवासाए) प्यास से (पुट्टो) पीड़ित होने पर (सीओदगं) सचित्त पानी का (ण सेवेज्जा) सेवन न करे किन्तु (वियडस्सेसणं) अग्नि आदि के संयोग से प्रासुक बने हुए पानी की एषणा के लिए (चरे) विचरे ॥4॥

**अन्वयार्थः-** (छिन्नावाएसु) जहाँ लोगों का आना जाना नहीं है ऐसे निर्जन (पंथेसु) मार्ग में जाता हुआ साधु (सुपिवासिए) प्यास से (आउरे) अति व्याकुल हो जाए तथा (परिसुक्कमुहे) मुँह सूख जाए फिर भी उसे (अदीणे) दीनता रहित होकर (तं परीसहं) उस प्यास के परीषह को (तितिक्खे) सहन करना चाहिये, किन्तु साधु-मर्यादा का उल्लंघन कर सचित्त पानी का कभी सेवन न करना चाहिये ॥5॥

चरंतं विरयं लूहं, सीयं फुसइ एगया।  
नाइवेलं मुणी गच्छे, सोच्चा णं जिण-सासणं॥6॥

न मे निवारणं अत्थि, छवित्ताणं न विज्जई।  
अहं तु अग्गिं सेवामि, इइ भिक्खू न चिंतए॥7॥

**अन्वयार्थः-** (विरयं) अग्नि आदि के आरंभ से निवृत्त (लूहं) रूक्ष शरीर वाले साधु को (चरंतं) संयम मार्ग में विचरते हुए (एगया) कभी शीतकाल में या अन्य समय में (सीयं) ठंड (फुसइ) लगे तो (मुणी) साधु (जिणसासणं) जिनागम को (सोच्चाणं) सुनकर (अइवेलं) साधु मर्यादा या स्वाध्याय आदि की वेला का अतिक्रमण कर (न गच्छे) एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जावे ॥6॥

**अन्वयार्थः-** (निवारणं) शीत एवं वायु से बचाने वाले मकान आदि (मे) मेरे पास (न) नहीं (अत्थि) हैं और (न) न मेरे पास (छवित्ताणं) शरीर की रक्षा करने वाले वस्त्र कम्बल आदि (विज्जई) है, इसलिये (अहं) मैं (तु) तो (अग्गिं) अग्नि का (सेवामि) सेवन कर लूँ। (इइ) इस प्रकार (भिक्खू) साधु (न चिंतए) विचार भी न करे, सेवन करना तो दूर रहा ॥7॥



उसिण परियावेणं, परिदाहेण तज्जिए।  
 धिंसु वा परियावेणं, सायं नो परिदेवए॥8॥  
 उण्हाहि-तत्तो मेहावी, सिणाणं नो वि पत्थए।  
 गायं नो परिसिंचेज्जा, न वीएज्जा य अप्पयं॥9॥  
 पुट्ठो य दंस-मसएहिं, समरे व महामुणी।  
 नागो संगामसीसे वा, सूरु अग्धिणे परं॥10॥

**अन्वयार्थः-** ( धिंसु ) ग्रीष्म ऋतु में ( वा ) अथवा अन्य ऋतु में ( उसिणं परियावेणं ) उष्ण स्पर्श वाले पृथ्वी शिला आदि के ताप से ( परिदाहेण ) शरीर के अन्दर और बाहर के दाह-जलन से और ( परियावेणं ) सूर्य के ताप से ( तज्जिए ) पीड़ित हुआ साधु ( सायं ) सुख के लिये ( नो परिदेवए ) परिदेवना-विलाप न करे कि यह ताप कब शान्त होगा ॥8॥

**अन्वयार्थः-** ( उण्हाहितत्तो ) गर्मी से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी ( मेहावी ) बुद्धिमान साधु ( सिणाणं ) स्नान की ( नो वि पत्थए ) अभिलाषा न करे ( गायं ) शरीर को ( नो परिसिंचेज्जा ) जल से न भिगोवे ( य ) और ( अप्पयं ) अपने शरीर पर ( न वीएज्जा ) पंखे आदि से हवा न करे ॥9॥

**अन्वयार्थः-** ( व ) जिस प्रकार ( संगामसीसे ) घोर संग्राम में ( नागो ) बहादुर हाथी ( वा ) अथवा ( सूरु ) शूरवीर योद्धा शत्रु के बाणों की परवाह न करते हुए ( परं ) शत्रु को ( अग्धिणे ) मारते हैं और विजय प्राप्त करते हैं इसी प्रकार ( महामुणी ) साधु भी ( दंसमसएहिं ) डांस मच्छर आदि के ( पुट्ठो य ) काटने पर भी ( समरे ) समभाव रखता हुआ क्रोधादि भाव शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे ॥10॥

न संतसे न वारेज्जा, मणं पि न पओसए।  
 उवेहे न हणे पाणे, भुंजंते मंस-सोणियं॥11॥  
 परिजुन्नेहिं वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए।  
 अदुवा सचेले होक्खामि, इइ भिक्खू न चिंतए॥12॥  
 एगया अचेलए होइ, सचेले यावि गया ।  
 एयं धम्महियं नच्चा, नाणी नो परिदेवए॥13॥

**अन्वयार्थः-** ( मंससोणियं ) मांस और लोही को ( भुंजंते ) चूसते हुए ( पाणे ) डांस मच्छर आदि प्राणियों को ( न हणे ) मारे नहीं और ( न संतसे ) न उन्हें त्रास ही पहुँचावे तथा ( न वारेज्जा ) उन्हें रोक कर अन्तराय भी न करे यहाँ तक कि ( मणं पि ) मन से भी उन पर ( न पओसए ) द्वेष न करे किन्तु ( उवेहे ) समभाव रखे ॥11॥

**अन्वयार्थः-** ( वत्थेहिं ) वस्त्रों के ( परिजुन्नेहिं ) जीर्ण हो जाने पर ( अचेलए ) मैं वस्त्र रहित ( होक्खामि ) हो जाऊंगा ( त्ति ) इस प्रकार ( अदुवा ) अथवा ( सचेले ) वस्त्र सहित ( होक्खामि ) हो जाऊंगा ( इइ ) इस प्रकार ( भिक्खू ) साधु ( न चिंतए ) विचार न करे ॥12॥

**अन्वयार्थः-** ( एगया ) एक बार यानी जिनकल्पी अवस्था में साधु ( अचेलए ) वस्त्र रहित ( होइ ) होता है ( यावि ) और ( एगया ) एक बार यानी स्थविर कल्पी अवस्था में साधु ( सचेले ) वस्त्र सहित होता है इस प्रकार ( एयं ) वस्त्र रहित और वस्त्र सहित इन दोनों अवस्थाओं को ( धम्महियं ) धर्म के लिए हितकारी ( नच्चा ) जानकर ( नाणी ) ज्ञानी पुरुष ( नो परिदेवए ) खेद न करे ॥13॥

गामाणुगामं रीयंतं, अणगारं अकिंचणं।  
 अरई अणुप्पवेसेज्जा, तं तितिक्खे परीसहं॥14॥  
 अरइं पिट्ठओ किच्चा, विरए आय-रक्खिए।  
 धम्मारामे निरारंभे, उवसंते मुणी चरे॥15॥  
 संगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगम्मि इत्थिओ।  
 जस्स एया परिन्नाया, सुकडं तस्स सामण्णं॥16॥

**अन्वयार्थः-** ( गामाणुगामं ) ग्रामानुग्राम यानी एक ग्राम से दूसरे ग्राम ( रीयंतं ) विहार करते हुए ( अणगारं ) गृहत्यागी ( अकिंचणं ) परिग्रह रहित साधु के मन में यदि कभी ( अरई ) अरति यानी संयम में अरुचि ( अणुप्पवेसेज्जा ) उत्पन्न हो तो ( तं ) उस अरति ( परीसहं ) परीषह को ( तितिक्खे ) सहन करे अर्थात् मन में संयम विषयक अरति को स्थान न दे ॥14॥

**अन्वयार्थः-** ( विरए ) हिंसादि से निवृत्त ( आयरक्खिए ) दुर्गति से आत्मा की रक्षा करने वाला ( निरारंभे ) आरंभ त्यागी ( उवसंते ) क्रोध आदि कषायों को शान्त करने वाला ( मुणी ) साधु ( अरइं ) संयम विषयक अरति का ( पिट्ठओ किच्चा ) तिरस्कार करके ( धम्मारामे ) धर्मरूप उद्धान में ( चरे ) विचरे ॥15॥

**अन्वयार्थः-** ( लोगम्मि ) लोक में ( जाओ ) जो ( इत्थिओ ) स्त्रियाँ हैं यह ( मणुस्साणं ) मनुष्यों के लिये ( संगो ) संग रूप अर्थात् आसक्ति का कारण है ( एया ) इन स्त्रियों को ( जस्स ) जिस साधु ने ( परिन्नाया ) ज्ञपरिज्ञा से त्याज्य समझकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से छोड़ दिया है ( तस्स ) उस साधु का ( सामण्णं ) साधुत्व ( सुकडं ) सफल है ॥16॥

एव-मादाय मेहावी, पंकभूया उ इत्थिओ।  
 नो ताहिं विनिहन्नेज्जा चरेज्ज-ऽत्तगवेसए॥17॥  
 एग एव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे।  
 गामे वा नगरे वा वि, निगमे वा रायहाणीए॥18॥  
 असमाणो चरे भिक्खू, नेव कुज्जा परिग्गहं।  
 असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिएओ परिक्वए॥19॥

**अन्वयार्थः-** ( एवं ) इस प्रकार ( इत्थिओ ) स्त्रियों के संग को ( पंकभूया उ ) कीचड़ रूप ( आदाय ) मानकर ( मेहावी ) बुद्धिमान साधु ( ताहिं ) उनमें ( नो विनिहन्नेज्जा ) न फंसे तथा ( अत्तगवेसए ) आत्म गवेषक होकर ( चरेज्ज ) संयम मार्ग में ही विचरे ॥17॥

**अन्वयार्थः-** ( लाढे ) प्रासुक एषणीय आहार से निर्वाह करने वाला प्रशस्त साधु ( परीसहे ) परीषहों को ( अभिभूय ) जीतकर ( गामे ) ग्राम ( वा ) अथवा ( नगरे ) नगर में ( वा वि ) अथवा ( निगमे ) व्यापारी बस्ती वाले प्रदेश में ( वा ) अथवा ( रायहाणीए ) राजधानी में ( एग एव ) अकेला अर्थात् राग-द्वेष रहित होकर ( चरे ) अप्रतिबद्ध विहार करे ॥18॥

**अन्वयार्थः-** ( भिक्खू ) साधु ( असमाणो ) गृहस्थियों की नेश्राय रहित होकर ( चरे ) अप्रतिबद्ध विहार करे ( परिग्गहं ) परिग्रह अर्थात् ग्रामादि में मूर्छा-ममत्व भाव ( नेव कुज्जा ) कतई न रखे ( गिहत्थेहिं ) गृहस्थों से ( असंसत्तो ) सम्बन्ध न रखता हुआ ( अणिएओ ) घर रहित होकर यानी एक जगह स्थान निश्चित न करके ( परिक्वए ) विहार करता रहे ॥19॥

सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्ख-मूले व एगओ।  
अकुक्कुओ निसीएज्जा, न य वित्तासए परं॥20॥

तत्थ से चिट्ठमाणस्स, उवसग्गाऽभिधारए।  
संकाभीओ न गच्छेज्जा, उट्ठेत्ता अन्न-मासणं॥21॥

**अन्वयार्थः-** ( सुसाणे ) साधु श्मशान में ( वा ) अथवा ( सुन्नगारे ) सुने घर में ( वा ) अथवा ( रुक्खमूले ) वृक्ष के नीचे ( अकुक्कुओ ) किसी तरह की अशिष्ट चेष्टा न करता हुआ ( एगओ ) अकेला ही राग-द्वेष रहित होकर ( निसीएज्जा ) बैठे ( य ) और ( परं ) किसी भी प्राणी को ( न वित्तासए ) त्रास न पहुँचावे ॥20॥

**अन्वयार्थः-** ( तत्थ ) वहाँ श्मशान आदि में ( चिट्ठमाणस्स ) बैठे हुए ( से ) उस साधु पर ( उवसग्ग ) यदि उपसर्ग आवे तो ( अभिधारए ) ऐसा चिन्तन करे कि मैं संयम में स्थिर हूँ मेरा ये क्या बिगाड़ सकते हैं। इस प्रकार विचार कर उन्हें समभाव पूर्वक सहन करे किन्तु ( संकाभीओ ) उपसर्गों से भयभीत होकर ( उट्ठेत्ता ) अपने स्थान से उठकर ( अन्नं ) दूसरे ( आसणं ) स्थान पर ( न गच्छेज्जा ) न जावे ॥21॥

उच्चा-वयाहिं सेज्जाहिं, तवस्सी भिक्खु थामवं।  
णाइवेलं विहन्नेज्जा, पाव-दिट्ठी विहन्नई॥22॥

पइरिक्कुवस्सयं लद्धुं, कल्लाणं अदुव पावगं।  
किमेगरायं करिस्सइ, एवं तत्थ-ऽहियासए॥23॥

**अन्वयार्थः-** ( थामवं ) शीत तापादि के परीषह को सहन करने में समर्थ ( तवस्सी ) तपस्वी ( भिक्खू ) साधु को यदि ( उच्चावयाहिं ) ऊँची नीची यानी अनुकूल प्रतिकूल ( सेज्जाहिं ) शय्या मिले तो हर्ष विषाद न करता हुआ ( अइवेलं ) संयम धर्म की मर्यादा का ( न विहन्नेज्जा ) उल्लंघन न करे क्योंकि ( पावदिट्ठी ) यह अच्छा है, यह बुरा है, इस प्रकार पाप दृष्टि रखने वाला साधु ( विहन्नई ) संयम की मर्यादा का उल्लंघन कर शिथिलाचारी हो जाता है। ॥22॥

**अन्वयार्थः-** ( पइरिक्क ) स्त्री पशु पण्डक आदि से रहित ( कल्लाणं ) अच्छा ( अदुव ) अथवा ( पावगं ) खराब ( उवस्सयं ) स्थान ( लद्धुं ) प्राप्त कर ( एगरायं ) एक रात में यह मेरा ( किं ) क्या ( करिस्सइ ) करेगा ( एवं ) इस प्रकार सोचकर साधु ( तत्थ ) वहाँ पर ( अहियासए ) समभाव से सुख दुःख सहन करे ॥23॥

अक्कोसेज्जा परे भिक्खुं, न तेसिं पडिसंजले।  
सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू न संजले।।24।।

सोच्चा णं फरुसा भासा, दारुणा गाम-कंटगा।  
तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ मणसीकरे।।25।।

**अन्वयार्थः-** (परे) कोई व्यक्ति (भिक्खुं) साधु को (अक्कोसेज्जा) गाली देवे, बुरे वचन कहकर उसका अपमान करे तो (तेसिं) उस पर (ण पडिसंजले) क्रोध न करे क्योंकि ऐसा करने से यह (बालाणं) अज्ञानियों के (सरिसो) सरीखा (होइ) हो जाता है (तम्हा) इसलिये (भिक्खू) साधु (न संजले) क्रोध न करे ।।24।।

**अन्वयार्थः-** (गाम कंटगा) श्रोत्र आदि इन्द्रियों को काँटे के समान चुभने वाली (दारुणा) दारुण-भयंकर (फरुसा) कठोर (भासा) भाषा को (सोच्चाणं) सुनकर (तुसिणीओ) साधु मौन रहकर उसकी (उवेहेज्जा) उपेक्षा करे (ताओ) उस कठोर भाषा को (मणसी) मन में (न करे) न रखे अर्थात् कठोर वचन कहने वाले पर द्वेष भाव न लावे ।।25।।

हओ ण संजले भिक्खू, मणं पि ण पओसए।  
तित्तिक्खं परमं नच्चा, भिक्खू धम्मं विचिंतए।।26।।

समणं संजयं दंतं, हणेज्जा कोइ कत्थई।  
नत्थि जीवस्स नासु त्ति, एवं पेहेज्ज संजए।।27।।

**अन्वयार्थः-** यदि कोई दुष्ट-अनार्य पुरुष साधु को (हओ) मारे तो (भिक्खू) साधु (न संजले) उस पर क्रोध न करे (मणं पि) मन से भी (न पओसए) उस पर द्वेष न लावे (तित्तिक्खं) क्षमा (परमं) उत्कृष्ट धर्म है (नच्चा) ऐसा जानकर (भिक्खू) साधु (धम्मं) क्षमा, मार्दव आदि दसविध यतिधर्म का (विचिंतए) विचार करे-पालन करे ।।26।।

**अन्वयार्थः-** (दंतं) पाँच इन्द्रियों का दमन करने वाले (संजयं) संयमवन्त (समणं) तपस्वी साधु को (कोइ) कोई भी व्यक्ति (कत्थई) कहीं पर (हणेज्जा) मारे तो (जीवस्स) जीव का (नासु त्ति) कभी नाश (नत्थि) नहीं होता है (एवं) इस प्रकार (संजए) साधु (पेहेज्ज) विचार करे ।।27।।

दुक्करं खलु भो! निच्चं, अणगारस्स भिक्खुणो।  
सव्वं से जाइयं होइ, नत्थि किंचि अजाइयं॥28॥  
गोयरग्ग-पविट्ठस्स, पाणी नो सुप्पसारए।  
सेओ अगार-वासु त्ति, इइ भिक्खू न चिंतए॥29॥

**अन्वयार्थः-** गुरु महाराज कहते हैं कि (भो) हे शिष्य! (अणगारस्स) घर बार के त्यागी (भिक्खुणो) भिक्षा से निर्वाह करने वाले साधु का जीवन (खलु) निश्चय ही (दुक्करं) बड़ा कठिन है क्योंकि (से) उसे (सव्वं) सभी आहार उपकरण आदि वस्तु (निच्चं) सदा (जाइयं) मांगने पर ही (होइ) मिलती है (अजाइयं) बिना मांगे उसे (किंचि) कोई भी चीज (नित्थि) नहीं मिलती है ॥28॥

**अन्वयार्थः-** (गोयरग्गपविट्ठस्स) गोचरी के लिये गये हुए साधु का (पाणी) हाथ भिक्षा मांगने के लिये (नो सुप्पसारए) सहज ही नहीं फैलता, इससे तो (अगारवासु त्ति) गृहवास ही (सेओ) अच्छा है (इइ) इस प्रकार (भिक्खू) साधु (न चिंतए) विचार भी न लावे ॥29॥

परेसु घासमेसेज्जा, भोयणे परिनिट्ठिए।  
लद्धे पिंडे अलद्धे वा, नाणु-तप्पेज्ज पंडिए॥30॥  
अज्जेवाहं न लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।  
जो एवं पडिसंचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए॥31॥

**अन्वयार्थः-** (भोयणे) भोजन के (परिनिट्ठिए) तैयार हो जाने पर साधु (परेसु) गृहस्थों के यहाँ (घास) आहार की (एसेज्जा) गवेषणा करे (पिंडे) आहार के (लद्धे) मिलने पर (वा) अथवा (अलद्धे) न मिलने पर (पंडिए) बुद्धिमान साधु (नाणुतप्पेज्ज) खेद न करे ॥30॥

**अन्वयार्थः-** (अहं) मुझे (अज्जेव) आज (न लब्भामि) आहार नहीं मिला है तो (अवि) संभवतः (सुए) कल (लाभो) आहार की प्राप्ति (सिया) हो जायेगी (जो) जो साधु आहार प्राप्त न होने पर (एवं) इस प्रकार (पडिसंचिक्खे) विचार कर दीनभाव नहीं लाता (तं) उसे (अलाभो) अलाभ परीषह (न तज्जए) नहीं सताता है ॥31॥

**अन्वयार्थः-** (दुक्खं) दुःख यानी ज्वरादि रोग (उप्पइयं) उत्पन्न हुआ (नच्चा) जानकर (वेयणाए) वेदना से (दुहट्ठिए) दुखी हुआ साधु रोगादि को स्वकृत कर्म का फल जानकर (अदीणो) दीनता रहित होकर (पन्नं) अपनी बुद्धि को (ठावए) स्थिर करे और (तत्थ) रोगावस्था में (पुट्ठो) रोग से स्पृष्ट होने पर उसे (अहियासए) समभावपूर्वक सहन करे ॥32॥

नच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्टिए।  
अदीणो ठावए पन्नं, पुट्ठो तत्थ-ऽहियासए॥32॥  
तेगिच्छं नाभिनंदेज्जा, संचिक्ख-ऽत्तगवेसए।  
एवं खु तस्स सामण्णं, जं न कुज्जा न कारवे॥33॥

**अन्वयार्थः-** (दुक्खं) दुःख यानी ज्वरादि रोग (उप्पइयं) उत्पन्न हुआ (नच्चा) जानकर (वेयणाए) वेदना से (दुहट्टिए) दुखी हुआ साधु रोगादि को स्वकृत कर्म का फल जानकर (अदीणो) दीनता रहित होकर (पन्नं) अपनी बुद्धि को (ठावए) स्थिर करे और (तत्थ) रोगावस्था में (पुट्ठो) रोग से स्पृष्ट होने पर उसे (अहियासए) समभावपूर्वक सहन करे ॥32॥

**अन्वयार्थः-** (अत्तगवेसए) आत्मशोधक मुनि (तेगिच्छं) चिकित्सा की (नाभिनंदेज्जा) अनुमोदना भी न करे-करना तो दूर रहा, रोग को अपने किये हुए कर्मों का फल जानकर (संचिक्ख) समाधिपूर्वक उसे सहन करे (जं) जो रोग की चिकित्सा (न कुज्जा) न स्वयं करता है और (न कारवे) न दूसरे से कराता है तथा करते हुए को भला भी नहीं समझता है (एवं खु) इसी में (तस्स) उस साधु की (सामण्णं) सच्ची साधुता है ॥33॥

अचेलगस्स लूहस्स, संजयस्स तवस्सिणो।  
तणेसु सय-माणस्स, हुज्जा गाय-विराहणा॥34॥  
आयवस्स निवाएणं, अउला हवइ वेयणा।  
एवं नच्चा न सेवंति, तंतुजं तण-तज्जिया॥35॥

**अन्वयार्थः-** (अचेलगस्स) वस्त्र रहित (लूहस्स) रूक्ष शरीर वाले (संजयस्स) संयमी (तवस्सिणो) तपस्वी मुनि को (तणेसु) तृणों पर (सयमाणस्स) सोते हुए (गाय विराहणा) शरीर में पीड़ा (हुज्जा) होती है ॥34॥

**अन्वयार्थः-** (आयवस्स) अत्यन्त धूप (निवाएणं) पड़ने से और (तणतज्जिया) तृणों के स्पर्श से (अउला) अत्यधिक (वेयणा) वेदना (हवइ) होती है उस समय साधु को (एवं) इस प्रकार विचार करना चाहिये कि इस आत्मा ने नरकादि दुर्गतियों में जो वेदना सही है उसके मुकाबले यह तृणजन्य वेदना तो कुछ भी नहीं है। आये हुए कष्टों को समभाव से सहन करना मेरे लिए महान लाभ का कारण है ऐसा (नच्चा) जानकर जिनकल्पी मुनि (तंतुजं) वस्त्र कम्बल आदि का (न सेवंति) सेवन नहीं करते हैं ॥35॥

किलिण्ण-गाए मेहावी, पंकेण वा रएण वा।  
धिंसु वा परियावेणं, सायं नो परिदेवए॥36॥  
वेएज्ज निज्जरा-पेही, आरियं धम्म-ऽणुत्तरं।  
जाव सरीर-भेउ त्ति, जल्लं काएण धारए॥37॥  
अभिवायण-मब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा निमंतणं।  
जे ताइं पडिसेवंति, न तेसिं पीहए मुणी॥38॥

**अन्वयार्थः-** ( धिंसु ) ग्रीष्म ऋतु में ( वा ) अथवा अन्य ऋतु में ( परियावेणं ) परिताप से होने वाले पसीने से ( वा ) अथवा ( पंकेण ) मैल से ( व ) अथवा ( रएण ) रज से ( किलिण्णगाए ) शरीर भर जाय तो भी ( मेहावी ) बुद्धिमान साधु ( सायं ) सुख के लिये ( नो परिदेवए ) परिदेवना न करे अर्थात् दीनता न दिखावे ॥36॥

**अन्वयार्थः-** ( अणुत्तरं ) सर्व प्रधान ( आरियं ) आर्य ( धम्म ) श्रुतचारित्र रूप धर्म को ( वेएज्ज ) प्राप्त करके ( निज्जरापेही ) निर्जरा को चाहने वाला साधु ( जाव ) जब तक ( सरीरभेउ त्ति ) शरीर का नाश न हो तब तक यानी जीवन पर्यन्त ( काएण ) इस शरीर द्वारा ( जल्लं ) मैल परिषह को ( धारए ) समभाव पूर्वक सहन करे ॥37॥

**अन्वयार्थः-** ( जे ) जो साधु स्वतीर्थी या अन्यतीर्थी ( सामी ) राजा आदि द्वारा ( कुज्जा ) किये गये ( अभिवायणं ) नमस्कार ( अब्भुट्ठाणं ) सत्कार सन्मान तथा ( निमंतणं ) भिक्षा के लिए निमंत्रण ( ताइं ) आदि का ( पडिसेवंति ) सेवन करते हैं ( मुणी ) साधु ( तेसिं ) उनकी ( न पीहए ) चाहना न करे और उनकी प्रशंसा भी न करे ॥38॥

अणु-क्कसाई अप्पिच्छे, अन्नाएसी अलोलुए।  
रसेसु नाणुगेज्जेज्जा, नाणुतप्पेज्ज पण्णवं॥39॥  
से नूणं मए पुव्वं, कम्मा-ऽनाण-फला कडा।  
जेणाहं नाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कण्हुई॥40॥

**अन्वयार्थः-** ( अणुक्कसाई ) अल्पकषाय वाला ( अप्पिच्छे ) सत्कार सन्मान आदि की इच्छा न करने वाला ( अन्नाएसि ) अज्ञात कुलों से भिक्षा लेने वाला ( अलोलुए ) लोलुपता रहित ( पण्णवं ) बुद्धिमान साधु ( रसेसु ) सरस भोजन में ( नाणुगेज्जेज्जा ) आसक्ति न रखे और उसके न मिलने पर ( नाणुतप्पेज्ज ) खेद न करे तथा दूसरों के सत्कार सम्मानादि उत्कर्ष को देखकर इर्षालु न बने ॥39॥

**अन्वयार्थः-** ( नूणं ) निश्चय ही ( मए ) मैंने ( पुव्वं ) पूर्व जन्म में ( नाणफला ) ज्ञान फल देने वाले ( कम्मा ) कर्म ( कडा ) किये हैं ( जेण ) जिस कारण से ( अहं ) मैं ( ना ) सामान्य मनुष्य होते हुए भी ( केणइ ) किसी व्यक्ति द्वारा ( कण्हुई ) किसी भी विषय में ( पुट्ठो ) पूछा जाने पर ( नाभिजाणामि ) ठीक ठीक उत्तर देता हूँ ॥40॥

**नोट-** यह अर्थ प्रज्ञा के अतिशय की अपेक्षा से है और यही अर्थ इस प्रज्ञा परीषह में अधिक संगत होता है। टीकाकार ने अज्ञान के कर्मों की अपेक्षा भी इस गाथा का अर्थ दिया है वह इस प्रकार है:- ( नूणं ) निश्चय ही ( पुव्वं ) पूर्वभव में ( मए ) मैंने ( अनाणफला ) अज्ञान फल वाले ( कम्मा ) कर्म ( कडा ) किये हैं ( जेण ) जिससे कि ( अहं ) मैं ( केणइ ) किसी व्यक्ति द्वारा ( कण्हुई ) किसी विषय में ( पुट्ठो ) पूछा जाने पर ( नाभिजाणामि ) नहीं जानता अर्थात् ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकता हूँ ॥40॥

अह पच्छा उइज्जंति, कम्मा-ऽनाण-फला कडा।  
 एवमस्सासि अप्पाणं, नच्चा कम्म-विवागयं॥41॥  
 निरट्ठ-गम्मि विरओ, मेहुणाओ सुसंवुडो।  
 जो सक्खं नाभिजाणामि, धम्मं कल्लाण-पावगं॥42॥

**अन्वयार्थः-** (अह पच्छा) इसके बाद यानी ज्ञान का अभिमान करने से (कडा) किये हुए (अनाणफला) अज्ञान फल देने वाले (कम्मा) कर्म (उइज्जन्ति) उदय में आवेंगे (एवं) इस प्रकार (कम्मविवागयं) कर्म विपाक को (नच्चा) जानकर (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (अस्सासि) आश्वासन देना चाहिए अर्थात् ज्ञान का गर्व न करना चाहिए ॥41॥

**अन्वयार्थः-** (जो) जो मैं अभी तक (सक्खं) साक्षात् स्पष्ट रूप से (कल्लाण) कल्याणकारी (धम्मं) धर्म के स्वरूप को और (पावगं) पाप के स्वरूप को भी (नाभिजाणामि) नहीं जान सका हूँ तो फिर (मि) मेरा (मेहुणाओ) मैथुन आदि से (विरओ मि) निवृत्त होना और (सुसंवुडो) सम्यक् प्रकार आश्रवों का निरोध करना (निरट्ठगं) व्यर्थ ही है। इस प्रकार साधु कभी विचार न करे किन्तु ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करने का प्रयत्न करे ॥42॥

तवोवहाण-मादाय, पडिमं पडिवज्जओ।  
 एवं वि विहरओ मे, छउमं न णियट्ठई॥43॥  
 नत्थि नूणं परे लोए, इड्ढी वा वि तवस्सिणो।  
 अदुवा वंचिओ मि त्ति, इइ भिक्खू न चिंतए॥44॥

**अन्वयार्थः-** (तवोवहाणं) तप-उपधान तप आदि (आदाय) अंगीकार करके (पडिमं) साधु की प्रतिमा को (पडिवज्जओ) स्वीकार करते हुए (एवं वि) इस प्रकार उत्कृष्ट चर्या से भी (विहरओ) विचरते हुए (मे) मेरा (छउमं) छद्स्थपन-अज्ञान (न णियट्ठई) दूर नहीं होता है ॥43॥

**अन्वयार्थः-** (नूणं) निश्चय ही (परे लोए) परलोक- जन्मान्तर (वा वि) अथवा (तवस्सिणो) तपस्वी की (इड्ढी) ऋद्धि (नत्थि) नहीं है (अदुवा) इसलिए साधुपन लेकर (वंचिओ मि त्ति) मैं ठगा गया हूँ (इइ) इस प्रकार (भिक्खू) साधु (न चिंतए) विचार न करे ॥44॥



अभू-जिणा अत्थि-जिणा, अदुवा वि भविस्सई।  
मुसं ते एव-माहंसु, इइ भिक्खू न चिंतए॥45॥  
एए परीसहा सव्वे, कासवेण पवेइया।  
जे भिक्खू न विहण्णेज्जा, पुट्ठो केणइ कण्हुइ॥46॥  
॥ त्ति बेमि॥

॥ बिइयं परीसहऽज्जयणं समत्तं ॥2॥

**अन्वयार्थः-** ( जिणा ) राग-द्वेष को जीतने वाले सर्वज्ञ जिन देव ( अभू ) भूतकाल में हुए हैं ( जिणा ) वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में सर्वज्ञ जिन देव ( अत्थि ) हैं ( अदुवा वि ) अथवा ( भविस्सई ) भविष्य में होंगे ( एवं ) इस तरह ( ते ) उन सर्वज्ञ जिन देवों का अस्तित्व बताने वाले लोगों ने ( मुसं ) झूठ ( आहंसु ) कहा है अथवा भूत भविष्यत् वर्तमान काल के जिन देवों ने स्वर्ग आदि परलोक बतलाया है वह झूठ कहा है ( इइ ) इस प्रकार ( भिक्खू ) साधु ( न चिंतए ) विचार न करे ॥45॥

**अन्वयार्थः-** ( एए ) ये ( सव्वे ) सभी ( परीसहा ) परीषह ( कासवेण ) काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने ( पवेइया ) फरमाये हैं ( जे ) जिनके स्वरूप को जानकर ( भिक्खू ) धैर्यवान साधु ( कण्हुइ ) कहीं पर ( केणइ ) इन परीषहों में से किसी भी परीषह के ( पुट्ठो ) उपस्थित होने पर ( न विहण्णेज्जा ) संयम से विचलित न होवे ॥46॥ ( त्ति बेमि ) ऐसा मैं कहता हूँ।

## गुणस्थान<sup>▲</sup> स्वरूप

गुणस्थानों के अट्टाईस द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं:- 1. नाम, 2. लक्षण, 3. स्थिति, 4. क्रिया, 5. सत्ता, 6. बंध, 7. उदय, 8. उदीरणा, 9. निर्जरा, 10. भाव, 11. कारण, 12. परीषह, 13. आत्मा, 14. जीव के भेद, 15. गुणस्थान, 16. योग, 17. उपयोग, 18. लेश्या, 19. हेतु, 20. मार्गणा, 21. ध्यान, 22. दण्डक, 23. निमित्त, 24. चारित्र, 25. आकर्ष, 26. समकित, 27. अन्तर और 28. अल्पबहुत्व।

### 1. नाम द्वार

गुणस्थानों के नाम - 1. मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, 2. सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान, 3. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान, 4. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान, 5. देशविरत गुणस्थान, 6. प्रमत्त-संयत गुणस्थान, 7. अप्रमत्त संयत गुणस्थान, 8. निवृत्ति-बादर गुणस्थान, 9. अनिवृत्ति-बादर गुणस्थान, 10. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान, 11. उपशांत मोहनीय गुणस्थान, 12. क्षीण मोहनीय गुणस्थान, 13. सयोगिकेवलि गुणस्थान, 14. अयोगिकेवलि गुणस्थान।

### 2. लक्षण द्वार

#### 1. मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का लक्षण- जिनेश्वर भगवान की

▲ **टिप्पण-** संसारी आत्मा के ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों की शुद्धि-अशुद्धि और उत्कर्ष-अपकर्ष की अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते हैं।

■ श्रीमत् समवायांग सूत्र के 14वें समवाय में जीवस्थान (जीव समुदाय) के चौदह प्रकार बतलाये गये हैं। कर्मग्रन्थ आदि में इसके स्थान पर 'गुणस्थान' शब्द का प्रयोग किया है। 'जीवस्थान' में गुण सम्पन्न जीवों का तथा 'गुणस्थान' में जीवों के गुणों का उल्लेख है। अतः आगम में 'मिथ्यात्व' 'सास्वादन' आदि गुणपरक कथन न होकर गुणीपरक कथन है। आगमिक भेदों को कायम रखते हुए चौदह ही भेदों में समरसता लाने के लिये थोकड़े में 'मिथ्यात्व' आदि के स्थान पर 'मिथ्यादृष्टि' आदि का प्रयोग करना उपयुक्त लगता है।

गुणस्थानों के वर्णन में गुणों के भेद होने से सर्वत्र मिथ्यादृष्टि का गुणस्थान- मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, सास्वादन सम्यग् दृष्टि का गुणस्थान-सास्वादन सम्यग् दृष्टि गुणस्थान आदि (षष्ठी तत्पुरुषपरक) अर्थ समझना चाहिए।

वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रद्धे या प्ररूपे, जिन-मार्ग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिंसा में धर्म माने या प्ररूपे, कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्र पर आस्था रखे अथवा तत्त्व श्रद्धा का अभाव, जीव के ऐसे भाव को पहला 'मिथ्यादृष्टि गुणस्थान' कहते हैं। मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव पहले गुणस्थान में रहते हैं।

**पहले गुणस्थान का फल-** कर्मरूपी डंडे से आत्मा रूपी गेंद चार गति चौबीस दण्डक और चौरासी लाख जीव-योनियों में बारम्बार परिभ्रमण कर दुःख भोगती रहती है।

**2. दूसरे गुणस्थान का लक्षण-** जो औपशमिक सम्यक्त्वी जीव अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व को छोड़कर मिथ्यात्व की ओर झुक रहा है किन्तु अभी मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं किया है उसकी इस अवस्था विशेष को सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं। जैसे किसी ने खीर का भोजन किया और बाद में वमन कर दिया तो उसे कुछ गुड़चटा सा स्वाद रहता है अथवा जैसे घंटे से गंभीर शब्द निकल चुकने के बाद उसकी रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है, उसके समान अथवा आत्मारूपी आम्र वृक्ष की परिणामरूपी डाली से मोहरूपी वायु चलने से समकित रूपी फल टूट गया परन्तु पृथ्वी पर नहीं पहुँचा, बीच ही में है तब तक के परिणाम को "सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान" कहते हैं।

**3. तीसरे गुणस्थान का लक्षण-** इस गुणस्थान में रहे जीवों को तत्त्व या अतत्त्व किसी में भी न रुचि होती है, न अरुचि।

इस विषय में नारिकेल द्वीप के मनुष्यों का दृष्टांत है यथा जिस द्वीप में खाने के लिए सिर्फ नारियल ही होते हैं, उसे नारिकेल द्वीप कहते हैं। वहाँ मनुष्यों ने न अन्न को देखा है और न ही उसके विषय में कुछ सुना है। अतएव उनको अन्न में रुचि नहीं होती और न अरुचि ही होती है। इसी प्रकार जब मिश्र मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब जीव को जैन धर्म और अन्य धर्मों में प्रीति नहीं होती और अप्रीति भी नहीं होती।

**4. चौथे गुणस्थान का लक्षण-** सात प्रकृतियों का क्षयोपशम आदि करने पर जीव की जो अवस्था होती है उसे चौथा "अविरत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान" कहते हैं। वे सात प्रकृतियाँ ये हैं- 1. अनन्तानुबन्धी क्रोध, 2. अनन्तानुबन्धी मान, 3. अनन्तानुबन्धी माया, 4. अनन्तानुबन्धी लोभ, 5. मिथ्यात्व मोहनीय, 6. मिश्र मोहनीय, 7. सम्यक्त्व मोहनीय।

जिनका उदय तात्त्विक रुचि का निमित्त होकर भी औपशमिक या क्षायिक भाववाली तत्त्व रुचि का प्रतिबन्ध करता है, ऐसे सम्यक्त्व का घात करने में असमर्थ मिथ्यात्व के शुद्ध दलिकों को सम्यक्त्व मोहनीय कहते हैं।

इस गुणस्थान में प्रमुखता से तीन प्रकार का सम्यक्त्व हो सकता है- (अ) **क्षायिक सम्यक्त्व-** इसमें चार अनन्तानुबन्धी एवं तीन दर्शन मोहनीय इन सात प्रकृतियों का सर्वथा क्षय हो जाता है।

(ब) **उपशम सम्यक्त्व-** इसमें चार अनन्तानुबन्धी का उपशम या क्षयोपशम या विसंयोजना एवं तीन दर्शन मोहनीय का उपशम हो जाता है अर्थात् इनका उदय सर्वथा रूक जाता है।

(स) **क्षयोपशम सम्यक्त्व-** इसमें सम्यक्त्व मोहनीय के विपाकोदय अर्थात् फल की अनुभूति कराने वाले उदय की नियमा होती है। शेष 6 प्रकृतियाँ चार अनन्तानुबन्धी, मिथ्यात्व मोहनीय एवं मिश्र मोहनीय का विपाकोदय नहीं होता है।\* चौथे गुणस्थान में आया हुआ जीव जीवादिक नव पदार्थ का जानकार होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि से लेकर वर्षीतप को उपादेय जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे परन्तु पालन नहीं कर सकता क्योंकि वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।<sup>▲</sup> अविरत सम्यग्दृष्टि को दर्शन श्रावक भी कहा जाता है।

\* इन छः प्रकृतियों के विपाकोदय के अभाव में क्षय, क्षयोपशम, उपशम आदि की अपेक्षा अनेक भंग होते हैं। थोड़े में उस विस्तार को गौण किया गया है। विशेष जिज्ञासु कर्म सिद्धान्त का अध्ययन करें।

▲ अप्रत्याख्यानी कषाय के उदय से एकदेश संयम भी पालन नहीं कर सकता।

**5. देशविरत गुणस्थान-** प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के कारण जो जीव पापजनक क्रियाओं से सर्वथा तो नहीं किन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न होने के कारण देश (अंश) से पापजनक क्रियाओं से अलग हो सकते हैं, वे देशविरत कहलाते हैं। देशविरत को व्रती श्रावक भी कहते हैं। इनका स्वरूप विशेष देशविरत गुणस्थान है। इस गुणस्थान में आया हुआ जीव, जीवादिक नौ पदार्थों का जानकार होता है। नवकारसी आदि से लेकर वर्षीतप आदि जानता है, श्रद्धान करता है, प्ररूपणा करता है और शक्ति के अनुसार प्रत्याख्यान करता है। एक व्रत से लेकर श्रावक के बारह व्रत तक, एक से लेकर ग्यारह प्रतिमा तक पालन करे यावत् संलेखना संधारा करे।

**6. प्रमत्त संयत गुणस्थान-** प्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम से जो जीव पापजनक व्यापारों से सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं वे संयत (मुनि) हैं। लेकिन संयत भी जब तक प्रमाद का सेवन करते हैं तब तक वे प्रमत्त संयत कहलाते हैं, और उनके स्वरूप विशेष को प्रमत्त संयत गुणस्थान कहते हैं।

**7. अप्रमत्त संयत गुणस्थान-** जो संयत (मुनि) विकथा, कषाय आदि प्रमादों को नहीं सेवते हैं, वे अप्रमत्त संयत हैं यद्यपि सातवें से चौदहवें गुणस्थान तक के सभी जीव अप्रमत्त संयत हैं लेकिन जिन अप्रमत्त संयतों के अध्यवसाय आठवें गुणस्थान की अपेक्षा मंद विशुद्धि वाले हैं उनका स्वरूप विशेष अप्रमत्त संयत गुणस्थान कहलाता है इस गुणस्थान में व्यक्त प्रमाद नष्ट हो चुके हैं किन्तु संज्वलन कषाय एवं नोकषायों का मंद उदय रहता है।

**8. निवृत्ति बादर गुणस्थान-** निवृत्ति अर्थात् सम समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के अध्यवसायों की भिन्नता एवं बादर अर्थात् बादर कषाय का उदय-ये दोनों अवस्थाएँ होने से आठवें गुणस्थान को निवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में स्थिति घात, रसघात, गुण श्रेणी,

गुण संक्रमण एवं स्थिति बंध ये पाँच कार्य पहले के गुणस्थानों की अपेक्षा अपूर्व होते हैं, अतः इसे अपूर्व करण गुणस्थान भी कहते हैं।

**9. अनिवृत्ति बादर गुणस्थान-** अनिवृत्ति अर्थात् समसमयवर्ती त्रैकालिक जीवों के अध्यवसायों की समानता एवं बादर अर्थात् बादर कषाय का उदय- ये दोनों अवस्थाएँ होने से नौवें गुणस्थान को अनिवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं।

**10. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान-** इस गुणस्थान में संपराय अर्थात् कषाय (लोभ) के सूक्ष्म खण्डों का ही उदय होने से इसका सूक्ष्म संपराय गुणस्थान ऐसा सार्थक नाम प्रसिद्ध है। जिस प्रकार धुले हुए गुलाबी रंग के कपड़े में लालिमा (सुखी) सूक्ष्म-झीनी-सी रह जाती है, उसी प्रकार इस गुणस्थानवर्ती जीव संज्वलन लोभ के सूक्ष्म खण्डों का वेदन करता है। इसलिए इसे सूक्ष्म संपराय गुणस्थान कहते हैं।

**11. उपशांत मोहनीय गुणस्थान-** जिनके मोहनीय कर्म सर्वथा उपशांत हैं, उनके स्वरूप विशेष को उपशांत मोहनीय गुणस्थान कहते हैं।

शरद् ऋतु में होने वाले सरोवर के जल की तरह, मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणाम इस गुणस्थान वाले जीव के होते हैं। आशय यह है कि मोहनीय कर्म की सत्ता तो है परन्तु उदय नहीं होता है।

**12. क्षीण मोहनीय गुणस्थान-** जिनके मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो चुका है, किन्तु शेष तीनों घाती कर्मों (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं अंतराय) का उदय है, उनके स्वरूप विशेष को क्षीण मोहनीय गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीव के भाव स्फटिक मणि के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल होते हैं, क्योंकि मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाता है, सत्ता भी नहीं रहती है।

**13. ▲सयोगिकेवलि गुणस्थान-** जो चार घातिकर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय) का क्षय करके केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर चुके हैं, जो पदार्थ के जानने देखने में इंद्रिय आलोक आदि की अपेक्षा नहीं रखते हैं और योग (मन, वचन, काया) की प्रवृत्ति सहित हैं, उन्हें सयोगिकेवलि कहते हैं और उनकी अवस्था विशेष को सयोगिकेवलि गुणस्थान कहते हैं।

**14. ▲अयोगिकेवलि गुणस्थान-** जो केवली भगवान योगों से रहित हैं वे अयोगिकेवलि कहलाते हैं, अर्थात् जब सयोगिकेवलि मन, वचन और काया के योगों का निरोध कर योग रहित शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं तब वे अयोगिकेवलि कहलाते हैं और उनकी अवस्था विशेष को अयोगिकेवलि गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में 5 लघु अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण जितनी स्थिति तक रहकर-1. वेदनीय, 2. आयुष्य, 3. नाम और 4. गोत्र-इन चार अघाति कर्मों का क्षय करके अणुसमाण (दूसरे समय एवं अन्य पदार्थ का स्पर्श न करने वाली) गति से, एक समय की अविग्रह (बिना मोड़वाली) गति से औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर को छोड़कर सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं। सिद्ध गति में जन्म नहीं, मरण नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, गुरु नहीं, चेला नहीं, भूख नहीं, प्यास नहीं, ज्योति में ज्योति विराजमान है। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अव्याबाध सुख, क्षायिक चारित्र, अक्षय स्थिति, अमूर्तिक, अगुरुलघु, अनंत वीर्य सहित विराजमान होते हैं।

▲ समासयुक्त पद होने से 'गि' 'लि' में ह्रस्व इकार का प्रयोग समुचित है।

### 3. • स्थिति द्वार

पहले गुण.

के तीन भंग हैं-

1. **अनादि अपर्यवसित** (अभव्य जीव की अपेक्षा) जिसकी आदि नहीं और अंत भी नहीं,
2. **अनादि सपर्यवसित** (भव्य जीव की अपेक्षा) जिसकी आदि नहीं किन्तु अन्त है,
3. **सादि सपर्यवसित** जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। (प्रतिपाती सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा) तीसरे भंग की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त्त और उ. देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल की है।

दूसरे गुण. की

ज. एक समय उ. छः आवलिका की है।

तीसरे गुण. की

ज. उ. अंतर्मुहूर्त्त की है। (ज. से उ. बड़ी होती है)

□ चौथे गुण. की

ज. अंतर्मुहूर्त्त उ. 33 सागरोपम झांझेरी।

5वें और 13वें गुण. की

ज. अंतर्मुहूर्त्त उ. देशोन करोड़ पूर्व।

6ठे गुण. की

ज. एक समय उ. देशोन करोड़ पूर्व।

7,8,9,10,11वें गुण.

ज. एक समय उ. अंतर्मुहूर्त्त।

12वें गुण. की

अजघन्य अनुत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त।

14वें गुण. की

मध्यमरीति से पाँच लघु अक्षर (अ,इ,उ,ऋ,लृ)

के उच्चारण करने में जितना काल लगे उतनी।

### 4. ▲ क्रिया द्वार

आगमों में एक साथ 25 क्रियाओं के रूप में उल्लेख उपलब्ध नहीं है। श्रीमत् ठाणांगसूत्र के पाँचवें ठाणे में पाँच-पाँच क्रियाओं के रूप में अलग-अलग वर्णन मिलता है अतः क्रिया द्वार में 25 क्रियाओं का

● अमुक गुणस्थान में आत्मा का लगातार बने रहने का काल।

□ पंच संग्रह भाग एक पृष्ठ 152 में चौथे गुणस्थान की स्थिति साधिक 33 सागरोपम बताई है, आगमों में इसका विरोध न होने से इसे ही प्रमाण स्वरूप माना गया है। क्षयोपशामिक सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट काल 66 सागरोपम झांझेरी का है पर उसमें गुणस्थान बदलते रहते हैं।

▲ कर्म बन्ध की कारणभूत चेष्टा को **क्रिया** कहते हैं।

उल्लेख न कर आरम्भिकी आदि 5 क्रियाओं के अनुसार उल्लेख किया जा रहा है। श्रीमत् प्रज्ञापनासूत्र के 22वें क्रिया पद के अनुसार कौनसी क्रिया कौनसे गुण में है इसका उल्लेख किया जा रहा है।

**पाँच क्रियाओं के नाम-** (1) आरम्भिकी, (2) पारिग्रहिकी, (3) मायाप्रत्यया, (4) मिथ्यादर्शन प्रत्यया, (5) अप्रत्याख्यान क्रिया।

1, 2 <sup>●</sup> , 3 गुण.	5	पाँचों क्रियायें पायी जाती है।
4 गुण.	4	मिथ्यादर्शन प्रत्यया के अलावा
5 गुण.	3	मिथ्या व अप्रत्याख्यान क्रिया को छोड़कर
6 गुण.	2	आरम्भिकी व मायाप्रत्यया क्रिया
7,8,9,10 गुण.	1	मायाप्रत्यया क्रिया
11,12,13,14 गुण.	-	इन पाँच में से कोई क्रिया नहीं लगती।

### 5. \* सत्ता द्वार

1 से 11 गुण.	8	ही कर्मों की सत्ता है।
12 गुण.	7	कर्मों की सत्ता है (मोहनीय कर्म को छोड़कर)
13-14 गुण.	4	कर्मों की सत्ता (4 अघाति कर्म वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र)।

### 6. \* बन्ध द्वार

1 से 7 गुण. (3रा छोड़कर)	7 या 8	कर्मों का बंध। जब 7 हो तो आयुकर्म का बंध नहीं होता।
3, 8, 9 गुण.	7	कर्मों का बन्ध (आयुकर्म को छोड़कर)
10 गुण.	6	कर्मों का बन्ध (मोहनीय व आयुकर्म छोड़कर)
11,12,13 गुण.	1	साता वेदनीय कर्म का बंध
14 गुण.		अबन्ध (कर्म बन्ध नहीं होता)।

● मिथ्यात्वभिमुख होने से एवं अनंतानुबन्धी कषाय का उदय होने से दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व की क्रिया लगना माना गया है।

\* आत्मा के साथ कर्मों का लगा रहना **सत्ता** है।

\* आत्मा के साथ कर्मों का क्षीर-नीर के समान एकमेक हो जाना **बन्ध** है।

### 7. □ उदय द्वार

1 से 10 गुण. तक	8	ही कर्मों का उदय है।
11 व 12 गुण.	7	कर्मों का उदय (मोहनीय कर्म को छोड़कर)
13 व 14 गुण.	4	अघाति कर्मों का उदय होता है।

### 8. \* उदीरणा द्वार

1 से 6 गुण. तक (3 को छोड़कर)	8 या 7 या 6 <sup>◆</sup>	की उदीरणा होती है। 7 की हो तो आयु या वेदनीय कर्म की नहीं होती और 6 की हो तो आयु व वेदनीय दोनों की नहीं होती।
3 गुण. में	8 या 7	कर्मों की।
7, 8, 9 गुण.	6	कर्मों की। आयु और वेदनीय छोड़कर।
10 गुण.	6 या 5	की (6 की हो तो उपरोक्त दो छोड़कर और 5 हो तो मोहनीय को भी छोड़कर)
11 गुण.	5	कर्मों की (आयु, वेदनीय, मोहनीय छोड़कर)
12 गुण.	5	की तथा अन्तिम आवलिका में 2 की (नाम व गोत्र की)
13 गुण.	2	की (नाम व गोत्र की)।
14 गुण.		उदीरणा नहीं होती।

□ अबाधाकाल पूर्ण होने पर कर्म का फल देना **उदय** कहलाता है।

\* उदयावलिका बहिर्भूत कर्मदलिकों को प्रयत्न विशेष से उदय समय में डालना **उदीरणा** है। उदयमान प्रकृतियों की ही उदीरणा होती है।

◆ यद्यपि पंचसंग्रह में पहले आदि गुणस्थानों में 8 या 7 की तथा तीसरे गुण. में 8 कर्मों की उदीरणा कही है। तथापि श्री भ.सू.रा. 21 के प्रमाण से वेदनीय की उदीरणा की भजना होने से पहले गुणस्थान आदि में 8 या 7 या 6 की व तीसरे गुण. में 8 या 7 की **उदीरणा** मानी है।

## 9. \* निर्जरा द्वार

1 से 10 गुण तक	8 ही कर्मों की निर्जरा।
11 व 12 गुण.	7 कर्मों की (मोहनीय कर्म को छोड़कर)
13 व 14 गुण.	4 कर्मों की (अघाति कर्मों की वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र) निर्जरा होती है।

## 10. • भाव द्वार

भाव पाँच होते हैं- 1. औदयिक भाव, 2. औपशमिक भाव, 3. क्षायिक भाव, 4. क्षयोपशमिक भाव और 5. पारिणामिक भाव।

1, 2, 3 गुण.	3 भाव	औदयिक, क्षयोपशमिक और पारिणामिक
4 से 7 गुण.	5 भाव	सभी पाँचों भाव।
8 से 11 गुण.	5 भाव	उपशम श्रेणी में सभी पाँचों भाव
8 से 12 गुण. (11वां छोड़कर)	4 भाव	क्षपक-श्रेणी में (औपशमिक को छोड़कर)
13 व 14 गुण.	3 भाव	औदयिक, क्षायिक व पारिणामिक भाव
सिद्ध भगवान में	2 भाव	क्षायिक व पारिणामिक।

1. कर्मों के उदय से होने वाले भाव को औदयिक कहते हैं जैसे- नरक गति, क्रोध-कषाय आदि।
2. कर्मों के उपशम से होने वाले भाव औपशमिक है। जैसे- उपशम समकित, उपशम चारित्र।
3. कर्मों के क्षय से होने वाला भाव क्षायिक है जैसे- केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि।
4. कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला भाव क्षयोपशमिक है जैसे- आभिनिबोधिक ज्ञान आदि।
5. स्वभाव से ही रहने वाला भाव पारिणामिक है जैसे- जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

\* आंशिक रूप से कर्मों का आत्मा से अलग होना **निर्जरा** है।

• जीव की अवस्था विशेष को **भाव** कहते हैं।

## 11. कारण द्वार

बन्ध के कारण पाँच होते हैं- 1. मिथ्यात्व, 2. अविरति, 3. प्रमाद, 4. कषाय और 5. योग।

1 गुण.	5	सभी पाँचों कारण
2, 3, 4 गुण.	4	(मिथ्यात्व को छोड़कर शेष चार*)
5 व 6 गुण.	3	(मिथ्यात्व व अविरति को छोड़कर शेष)
7 से 10 गुण.	2	(कषाय और योग दो ही कारण)
11, 12, 13 गुण.	1	मात्र शुभयोग ही कारण होता है।
14 गुण.	0	कोई कारण नहीं है।

## 12. • परीषह द्वार

बाईस परीषहों के नाम- 1. क्षुधा, 2. तृषा, 3. शीत, 4. उष्ण, 5. दंशमशक, 6. अचेल, 7. अरति, 8. स्त्री, 9. चर्या, 10. निषद्या (किसी स्थान में ठहरने पर भयजनक उपसर्ग आना), 11. शय्या, 12. आक्रोश, 13. वध, 14. याचना, 15. अलाभ, 16. रोग, 17. तृणस्पर्श, 18. जल्ल (मैल), 19. सत्कार-पुरस्कार, 20. प्रज्ञा, 21. अज्ञान, 22. दर्शन परीषह।

चार कर्मों के उदय से बाईस परीषह होते हैं। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से (बीसवां) प्रज्ञा और (इक्कीसवां) अज्ञान- ये दो परीषह होते हैं। वेदनीय कर्म के उदय से ग्यारह परीषह (पहला) क्षुधा, (दूसरा) तृषा, (तीसरा) शीत, (चौथा) उष्ण, (पाँचवां) दंशमशक, (नौवां) चर्या, (ग्यारहवां) शय्या, (तेरहवां) वध, (सोलहवां) रोग, (सतरहवां) तृणस्पर्श, (अठारहवां) जल्ल (मैल) होते हैं। मोहनीय कर्म के उदय से आठ परीषह होते हैं। दर्शन मोहनीय के उदय से एक (बाईसवां) दर्शन परीषह होता है और चारित्र-मोहनीय के उदय से सात (छठा) अचेल, (सातवां) अरति, (आठवां)

\* मिथ्यात्व के कारण से बंधने वाली नरक गति आदि 16 कर्म प्रकृतियाँ दूसरे, तीसरे गुणस्थान में नहीं बंधती है। अतः दूसरे, तीसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व को कारण मानना उपयुक्त नहीं है। क्रिया द्वार में दूसरे गुण में अनंतानुबंधी के उदय के कारण तथा तीसरे गुण में अज्ञान अवस्था के कारण मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया मानी गई है, किन्तु यहाँ बंध के कारणों का अधिकार है अतः मिथ्यात्व को कारण के रूप में ग्रहण नहीं किया गया।

• जिन्हें सहन किया जाता है, उन्हें परीषह कहते हैं अथवा मार्ग से न गिरने हेतु व निर्जरा के लिए जिन्हें सहन किया जाये, वे परीषह हैं।

स्त्री, (दसवां) निषद्या (किसी स्थान में ठहरने पर भय जनक उपसर्ग आना), (बारहवां) आक्रोश, (चौदहवां) याचना और (उन्नीसवां) सत्कार-पुरस्कार परीषह होते हैं। अन्तराय कर्म के उदय से एक (पन्द्रहवां) अलाभ परीषह होता है।

1 से 7 गुण.	22 परीषह▲	एक समय में एक जीव 20 परीषह ही वेदता है। शीत परीषह हो तो उष्ण नहीं होता और उष्ण हो तो शीत नहीं तथा चर्या परीषह हो तो निषद्या एवं शय्या नहीं होता और निषद्या या शय्या हो तो चर्या नहीं होता।
8, 9 गुण.	21 परीषह	उपरोक्त 22 में से दर्शन परीषह● छोड़कर (7 चा. मोह. के छोड़कर) जिनमें एक साथ अधिक से अधिक 12 परीषह वेदते हैं। शीत व उष्ण में से कोई एक तथा चर्या व शय्या में से कोई एक। (वेदनीय कर्म से होने वाले) जिनमें से एक जीव अधिकाधिक 9 वेदते हैं। शीत व उष्ण में से कोई एक तथा चर्या व शय्या में से कोई एक वेदते हैं।
10,11,12 गुण.	14 परीषह	
13 व 14 गुण.	11 परीषह	

### 13. आत्मा द्वार

आठ आत्माओं के नाम- 1. द्रव्य आत्मा, 2. कषाय आत्मा, ▲ श्रीमद् भगवती सूत्र शतक 8, उ. 8 में सात कर्मों का बन्ध करने वाले जीवों के 22 परीषह बताए गए हैं। श्रीमद् भगवतीसूत्र शतक 15 में गौशालक के भविष्य का वर्णन करते हुए बेमेल सन्निवेश की ब्राह्मण पुत्री के लिए भी परीषह शब्द का प्रयोग है। इसी प्रकार श्रीमद् भगवती सूत्र शतक 2 उद्देशक 1 में भी मुनि बनने के पहले स्कन्दक हेतु परीषह शब्द का उल्लेख हुआ है। ● 8वें, 9वें गुण. में दर्शन मोहनीय कर्म का उदय नहीं होता है, क्षय या उपशम होता है। अतः दर्शन मोहनीय कर्म के निमित्त से होने वाला दर्शन परीषह भी 8वें, 9वें गुण. में नहीं होता है।

3. योग आत्मा, 4. उपयोग आत्मा, 5. ज्ञान आत्मा, 6. दर्शन आत्मा, 7. चारित्र आत्मा और 8. वीर्य आत्मा।

1 व 3 गुण.	6	ज्ञान और चारित्र आत्मा के सिवाय 6 आत्मा।
2,4,5 गुण.	7	चारित्र आत्मा के सिवाय 7 आत्मा।
6 से 10 गुण.	8	सभी 8 आत्माएँ होती हैं।
11 से 13 गुण.	7	कषाय आत्मा के सिवाय 7 आत्मा।
14 गुण.	6	कषाय व योग आत्मा को छोड़कर
सिद्ध भगवान	4	द्रव्य, उपयोग, ज्ञान एवं दर्शन आत्मा

### 14. जीव भेद द्वार

1 गुण.	14	सभी चौदह भेद पाए जाते हैं।
2 गुण.	6	बेइ., तेइ., चउ., असंज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त।
3 गुण.	1	संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त।
4 गुण.	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त और पर्याप्त।
5 से 14 गुण.	1	संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त।

### 15. गुणस्थान द्वार

प्रत्येक गुणस्थान अपने-अपने गुण से संयुक्त होता है।

1 से 4 गुण.	1. असंयत, 2. अप्रत्याख्यानी, 3. अविरत, 4. असंवृत, 5. अपण्डित, 6. अजागृत, 7. अधर्मी, 8. अधर्म-व्यवसायी- ये आठ बोल पाये जाते हैं।
5 गुण.	1. संयता संयत, 2. प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी, 3. विरताविरत, 4. संवृतासंवृत, 5. बाल पण्डित, 6. सुप्त जागृत, 7. धर्मा-धर्मी, 8. धर्मा-धर्म व्यवसायी।
6 से 14 गुण.	1. संयत, 2. प्रत्याख्यानी, 3. विरत, 4. संवृत, 5. पण्डित, 6. जागृत, 7. धर्मी, 8. धर्म व्यवसायी।

### दूसरी तरह से गुणस्थान द्वार-

गत्यन्तर जाते मार्ग में गुणस्थान तीन-पहला, दूसरा और चौथा।

अमर गुण. **तीन**- 3, 12, 13

अप्रतिपाति गुण. **तीन**- 12, 13, 14

तीर्थकर नाम कर्म के बंधक गुण. **पाँच**- 4, 5, 6, 7, 8

तीर्थकर के लिए अस्पृश्य गुण. **पाँच**- 1, 2, 3, 5, 11

शाश्वत गुण. **छः**- 1, 4, 5, 6, 7, 13

अनाहारक गुण. **पाँच**- 1, 2, 4, 13\*, 14

मोक्ष प्राप्त करने वाला उस भव में कम से कम **आठ** गुण. अवश्य प्राप्त करता है- 4, 7, 8, 9, 10, 12, 13, 14 और संसार अवस्थान काल में कम से कम प्रथम गुण. सहित **नौ** गुण. प्राप्त करता है।

## 16. योग द्वार

1, 2 व 4 गुण.	13 योग	आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर
3 गुण.	10 योग	उपरोक्त 13 में से औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र, कार्मण काययोग छोड़कर
5 गुण.	12 योग	आहारक, आहारक मिश्र और कार्मण काययोग छोड़कर
6 गुण.	14 योग	कार्मण काययोग को छोड़कर
♦7 से 12 गुण.	9 योग	4 मनोयोग, 4 वचनयोग और एक औदारिक
13 गुण.	7 योग	सत्य मनोयोग, व्यवहार मनोयोग, सत्य वचनयोग, व्यवहार वचनयोग, औदारिक, औदारिक मिश्र, कार्मण।
14वें गुण.	-	योग नहीं होता।

\* 1, 2, 4 विग्रह गति एवं 13 केवली समुद्घात की अपेक्षा।

♦ श्रीमत् प्रज्ञापनासूत्र के 21वें पद में अप्रमतावस्था में आहारक शरीर नहीं बताया है अतः 7वें गुण. में आहारक व वैक्रिय काययोग नहीं मानकर 9 योग मानना ही उचित लगता है। मतान्तर से पंचसंग्रह के प्रथम द्वार योगोपयोग मार्गणा की सत्रहवीं गाथा के अनुसार सातवें गुणस्थान में वैक्रिय एवं आहारक योग मानने से कुल ग्यारह योग भी माने जाते हैं।

## 17. उपयोग द्वार

1 व 3 गुण.	6	तीन अज्ञान (मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग ज्ञान), तीन दर्शन (चक्षु, अचक्षु, अवधि)
2,4,5 गुण.	6	तीन ज्ञान व तीन दर्शन
6 से 12 गुण. (10वां छोड़कर)	7	4 ज्ञान, 3 दर्शन
10 गुण.	4	मति. श्रुत. अवधि व मनःपर्ययज्ञान
13 व 14 गुण.	2	केवलज्ञान व केवलदर्शन।

## 18. लेश्या द्वार

1 से 6 गुण.	6	छहों लेश्याएँ पायी जाती है।
7 गुण.	3	तेजो, पद्म और शुक्ल
8 से 12 गुण.	1	शुक्ल लेश्या।
13 गुण.	1	परम शुक्ल लेश्या।
14 गुण.	-	अलेशी (लेश्या नहीं होती)।

## 19. हेतु द्वार

हेतु 57 होते हैं- 5 मिथ्यात्व, 25 कषाय, 15 योग और 12 अत्रत (6 काय, 5 इन्द्रिय, 1 मन)।

1 गुण.	55	आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर
2 गुण.	50	(55-5) पाँच मिथ्यात्व को छोड़कर
3 गुण.	43	(50-7) अनन्तानुबन्धी चतुष्क, औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण काय योग को छोड़कर
4 गुण.	46	(43+3) पूर्वोक्त 43 के साथ ही औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण काययोग जोड़कर
5 गुण.	40	(46-6) अप्रत्याख्यानी चतुष्क, त्रस अविरति व कार्मण काययोग छोड़कर



6 गुण.	27	(14 योग + 13 कषाय)
7-8 गुण.	22	27 में से 5 (औदारिक मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय
	(9+13)	मिश्र, आहारक और आहारक मिश्र) को छोड़कर
9 गुण.	16	22 में से 6 (हास्यादिक) छोड़कर अथवा (7 कषाय
		+ 9 योग)
10 गुण.	10	9 योग+संज्वलन लोभ
11-12 गुण.	9	4 मन के, 4 वचन के और एक औदारिक
13 गुण.	7	सत्य मनोयोग, असत्यमृषा मनोयोग, सत्य भाषा,
		असत्यमृषा भाषा, औदारिक, औदारिक मिश्र, कर्मण।
14 गुण.	-	कोई भी हेतु नहीं होता।*

## 20. मार्गणा द्वार

यहाँ मार्गणा का तात्पर्य आने व जाने के मार्ग से है।\*

1 गुण.	आगति 5	पहले गुण. में जीव 2, 3, 4, 5, 6- इन पाँच गुण. से आ सकता है।
	गति 5	पहले गुण से जीव 3, 4, 5, 6, 7 - इन पाँच गुण. में जा सकता है।
2 गुण.	आगति 3	4, 5, 6 गुण.
	गति 1	पहला गुणस्थान

\* बन्ध के हेतु बतलाते हुए भिन्न-2 अपेक्षाओं से ग्रंथकारों ने दो, चार, पाँच अथवा सत्तावन हेतु बताए हैं ग्यारहवें कारण द्वार में पाँच की अपेक्षा कथन किया गया है तथा इस उन्नीसवें हेतु द्वार में सत्तावन हेतुओं की अपेक्षा कथन किया गया है।

● जैसे-पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा में आगति मार्गणा 5 यानी पहले गुणस्थान में जीव 5 गुणस्थानों (2, 3, 4, 5, 6) से आ सकता है और गति मार्गणा 5 यानि पहले गुणस्थान का जीव 5 गुणस्थानों (3, 4, 5, 6, 7) में जा सकता है

3 गुण.	आगति 4●	1, 4, 5, 6 गुण.
	गति 2+	गिरे▲ तो 1, चढ़े□ तो 4 गुण.
4 गुण.	आगति 9	1 से 11 गुण. (2 व 4 गुण. को छोड़कर)
	गति 6	चढ़े तो 5, 6, 7 गिरे तो 3, 2, 1 गुण.
5 गुण.	आगति 3	1, 4, 6 गुण.
	गति 6	चढ़े तो 6, 7, गिरे तो 4, 3, 2, 1 गुण.
6 गुण.	आगति 4	1, 4, 5, 7 गुण.
	गति 6	चढ़े तो 7, गिरे तो 5, 4, 3, 2, 1, गुण.
7 गुण.	आगति 5	1, 4, 5, 6, 8 गुण.
	गति 3	चढ़े तो 8, गिरे तो 6, काल करे तो 4 गुण.
8 गुण.	आगति 2	7, 9 गुण.
	गति 3	चढ़े तो 9, गिरे तो 7, काल करे तो 4 गुण.
9 गुण.	आगति 2	8, 10 गुण.
	गति 3	चढ़े तो 10, गिरे तो 8, काल करे तो 4 गुण.

● अप्पुलेण त्रिपुंजं, मिच्छं कारुण कोद्वोवमया।

तित्रि वि अवेययंतो उवसामगसम्मदिट्ठीओ॥108॥

'कोद्रवोपमया' कोद्रवदृष्टान्तेन अपूर्वकरणेन मिथ्यात्वं त्रिपुंजं कृत्वाऽनिवृत्ति-करणेन तत्प्रथमतया क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वमासादयति। ततः परिणामवशतः कालान्तरेण मिश्रं मिथ्यात्वं वा गच्छति।

- श्रीमलयगिरिजी की बृहत्कल्प भाष्य,

गाथा 108 की टीका, पत्रांक 35

+ सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वं संयमं च युगपन्न प्रतिपद्यते तथा विशुद्धेरभावात् पंचसंग्रह भाग-8 गाथा-72 की मलयगिरि टीका पत्रांक-1123 ।

सम्यग् मिथ्यादृष्टि जीव के तथारूप विशुद्धि का अभाव होने से सम्यक्त्व एवं संयम को एक साथ प्राप्त नहीं कर सकता। जिस प्रसंग में यह वर्णन आया है वहाँ संयम से देशसंयम एवं सर्वसंयम दोनों को स्वीकार किया गया है। अतः तीसरे गुण. के गति मार्गणा में सिर्फ चौथा गुण. ही ग्रहण किया गया है।

▲ परिणामों की मलीनता से ऊपर के गुण. से नीचे के गुण. में आना।

□ परिणामों की विशुद्धि से आगे के गुण. में बढ़ना।

10 गुण.	आगति 2 गति 4	9, 11 गुण. चढ़े तो 11-12, गिरे तो 9, काल करे तो 4 गुण.
11 गुण.	आगति 1 गति 2	10 गुण. गिरे तो 10, काल करे तो 4 गुण.
12 गुण.	आगति 1 गति 1	10 गुण. 13 गुण.
13 गुण.	आगति 1 गति 1	12 गुण. 14 गुण.
14 गुण.	आगति 1 गति 1	13 गुण. मोक्ष।

## 21. \*ध्यान द्वार

1, 2, 3 गुण.	2	आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान
4-5 गुण.	3	आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान और धर्मध्यान
6 गुण.	2	आर्त्तध्यान और धर्मध्यान
7 गुण.	1	धर्मध्यान
8 से 12 गुण.	2	धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान
13-14 गुण.	1	शुक्लध्यान

## 22. दण्डक द्वार

1 गुण.	24	दण्डक
2 गुण.	19	5 स्थावर को छोड़कर
3-4 गुण.	16	24 में से 5 स्थावर व 3 विकलेन्द्रिय छोड़कर
5 गुण.	2	तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य
6 से 14 गुण.	1	मनुष्य का एक दण्डक

**टिप्पणः-** गुणस्थानों में ध्यान के विषय में विभिन्न मान्यताएँ प्राप्त होती हैं। इस थोकड़े में 'जिणधम्मो' में आगत वर्णन को मान्य किया गया है।

\* चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं।

## 23. निमित्त द्वार

1 गुण.	मिथ्यात्व मोहनीय का उदय निमित्त है।
2 गुण.	दर्शन त्रिक का उपशम एवं अनन्तानुबंधी चतुष्क का उदय निमित्त है।
3 गुण.	मिश्र मोहनीय का उदय निमित्त है।
4 गुण.	दर्शन त्रिक एवं अनन्तानुबंधी चतुष्क का क्षय, उपशम या क्षयोपशम निमित्त है।
5 गुण.	अप्रत्याख्यान चतुष्क व संज्वलन चतुष्क का क्षयोपशम निमित्त है।
6 गुण.	प्रत्याख्यान चतुष्क एवं संज्वलन चतुष्क का क्षयोपशम निमित्त है।
7 व 8 गुण.	संज्वलन चतुष्क का क्षयोपशम निमित्त है।
9 गुण.	प्रारंभ में संज्वलन चतुष्क का क्षयोपशम एवं बाद में चारित्र मोहनीय की कुछ प्रकृतियों का क्षय या उपशम निमित्त है।
10 गुण.	संज्वलन लोभ का क्षयोपशम एवं चारित्र मोहनीय की शेष प्रकृतियों का उपशम या क्षय निमित्त है।
11 गुण.	चारित्र मोहनीय का पूर्ण उपशम निमित्त है।
12 गुण.	चारित्र मोहनीय का पूर्ण क्षय निमित्त है।
13 गुण.	ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं अंतराय कर्म का क्षय तथा योग का सद्भाव निमित्त होता है।
14 गुण.	योग का अभाव निमित्त है।

## 24. चारित्र द्वार

1-4 गुण.	-	कोई चारित्र नहीं।
5 गुण.	-	देश चारित्र
6, 7 गुण.	3	सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि चारित्र।
8, 9 गुण.	2	सामायिक व छेदोपस्थापनीय चारित्र।

10 गुण.	1 सूक्ष्म संपराय चारित्र।
11 से 14 गुण.	1 यथाख्यात चारित्र होता है।

## 25. \*आकर्ष द्वा

पहले गुण. का तीसरा भंग (सा. सप.) व 3, 4, 5 गुण.	एक भव की अपेक्षा ज. 1 बार उ. पृ. हजार बार अनेक भव की अपेक्षा ज. 2 बार उ. असं. बार
2 गुण.	एक भव की अपेक्षा ज. 1 बार उ. अनेक बार अनेक भव की अपेक्षा ज. 2 बार उ. असं. बार
6-7 गुण.	एक भव की अपेक्षा ज. 1 बार उ. पृ. सौ बार अनेक भव की अपेक्षा ज. 2 बार उ. पृ. हजार बार
8,9,10 गुण.	एक भव की अपेक्षा ज. 1 बार उ. 4 बार अनेक भव की अपेक्षा ज. 2 बार उ. 9 बार
11 गुण.	एक भव की अपेक्षा ज. 1 बार उ. 2 बार अनेक भव की अपेक्षा ज. 2 बार उ. 4 बार
12,13,14 गुण.	एक भव की अपेक्षा 1 बार अनेक भवों में भी 1 ही बार प्राप्त हो सकता है।

## 26. समकित द्वा

4 से 14 गुण.	क्षायिक सम्यक्त्व
4 से 11 गुण.	उपशम सम्यक्त्व
4 से 7 गुण.	क्षयोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व
2 गुण.	सास्वादन सम्यक्त्व
1 व 3 गुण.	कोई सम्यक्त्व नहीं होता है।

\* जीव एक भव की अपेक्षा और अनेक भवों की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान को जघन्य और उत्कृष्ट कितनी बार स्पर्श सकता है, उस स्पर्श करने की संख्या विशेष को **आकर्ष** कहते हैं।

**सांकेतिक शब्द :** ज. -जघन्य, उ. -उत्कृष्ट, पृ. -पृथक्त्व, अं. -असंख्यात, गुण. -गुणस्थान, सा. -सादि, सप. -सपर्यवसित

## 27. अन्तर द्वा

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं- 1. अनादि- अपर्यवसित (सदा से मिथ्यादृष्टि है और सदा रहेंगे), 2. अनादि सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि नहीं, किन्तु अंत है), 3. सादि सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि भी है और अंत भी है)।

1 गुण. के तीसरे भंग का अन्तर	ज. अन्तर्मुहूर्त और उ. 66 सागरोपम झाड़ेरी* है।
2 गुण. का अंतर (श्रीजीवाजीवा- भिगमसूत्र द्वितीय भाग सर्वजीव चतुर्विध वक्तव्यता से)	ज. पल्योपम का असंख्यातवां भाग <sup>●</sup> उ. देशो अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल।
3 से 11 गुण. (4 गुण छोड़कर) का अंतर	ज. अंतर्मुहूर्त और उ. देशो अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल।
4 गुण. का अंतर	ज. 1 समय उ. देशो अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल <sup>□</sup>
12, 13, 14 गुण. का	अंतर नहीं है।

\* **टिप्पण**-श्रीमद् जीवाजीवाभिगम सूत्र में सादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर 66 सागरोपम झाड़ेरी कहा है। तदनुसार थोकड़े में उल्लेख किया है। कर्म ग्रंथों के मत से मिथ्यादृष्टि का अंतर 132 सागरोपम झाड़ेरी कहा गया है। उनके अनुसार 66 सागरोपम झाड़ेरी सम्यग् दृष्टि रहकर जीव सम्यग् मिथ्यादृष्टि (मिश्र) को प्राप्त करके पुनः 66 सागरोपम झाड़ेरी सम्यग्दृष्टि रहकर फिर मिथ्यादृष्टि बनता है। तदनुसार मिथ्यादृष्टि का अंतर 132 सागरोपम झाड़ेरी माना गया है।

● पल्योपम के असं. भाग का अंतर प्रथमोपशम सम्यक्त्व से गिरकर दूसरे गुण. में जाने वाले जीव की अपेक्षा से है। कम्मपयडि एवं पंचसंग्रह के मतानुसार अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करने वाला ही उपशम श्रेणी (द्वितीयोपशम) का आरोहण करता है। अतः उक्त ग्रंथों के अनुसार द्वितीयोपशम वाला गिरकर मिथ्यात्व में जाते समय द्वितीय गुणस्थान का स्पर्श नहीं करेगा।

कर्मग्रन्थ के मत से अनन्तानुबंधी की उपशमना करके भी उपशम श्रेणी में आरोहण संभव है। उनके मतानुसार दूसरे गुणस्थान का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त का समझना चाहिए।

□ 4 गुण. का ज. अंतर- 4 से 6 गुण. में गया एक समय रहकर काल कर गया।

## 28. अल्प बहुत्व द्वार (जीव प्रमाण)

सबसे कम 11वें गुणस्थानवर्ती (प्रति पद्यमान की अपेक्षा 54)

उससे 12वें और 14वें गुण. वाले परस्पर तुल्य सं. गुणा (प्रति पद्यमान\* की अपेक्षा 108)

उससे 8वें, 9वें, 10वें गुणस्थान में परस्पर तुल्य विशेषाधिक (प्रति पद्यमान की अपेक्षा 162)

इससे 13वें गुण. वाले जीव सं. गुणा (पृथक्त्व करोड़)।

उससे 7वें गुण. सं. गुणा पृथक्त्व सौ करोड़।

उनसे 6ठे गुण. वाले सं. गुणा। ये ज. और उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार करोड़ पाये जाते हैं।

उससे 5वें गुण. वाले असं. गुणा<sup>2</sup>।

उससे 2रे गुण. वाले असं. गुणा<sup>3</sup>।

उससे 3रे गुण. वाले असं. गुणा<sup>4</sup>।

\* किसी विवक्षित समय में उस गुणस्थान को प्राप्त करने वाले।

1. लोक प्रकाश ग्रंथ श्लोक 1234 के अनुसार 7वें गुण की संख्या पृथक्त्व सौ करोड़ प्रकट होती है।
2. क्योंकि असंख्यात गर्भज तिर्यञ्च भी इस पाँचवें गुणस्थान में है।
3. दूसरे गुणस्थान वाले पाँचवें गुणस्थान से असंख्यात इस कारण है कि पाँचवां गुणस्थान केवल मनुष्य और तिर्यञ्चों को होता है, किन्तु दूसरा गुणस्थान विकलेन्द्रियों, नैरयिकों व देवताओं का भी होता है, परन्तु पाँचवां नहीं हो सकता।
4. यद्यपि दूसरा और तीसरा गुणस्थान चारों गतियों में पाया जाता है, परन्तु दूसरे की अपेक्षा तीसरे की स्थिति संख्यात गुणी है। इस कारण तीसरे गुणस्थान वाले जीव दूसरे से असंख्यात गुणा है। दूसरे से पाँचवें तक प्रत्येक गुणस्थान में वर्तमान जीव उ. से क्षेत्र पत्न्यो. के असं. भाग में विद्यमान प्रदेशराशि प्रमाण है।

उससे 4 गुण. वाले असं. गुणा<sup>5</sup>।

उससे 1 गुण. वाले अनंत गुणा<sup>6</sup>।

**“सेवं भंते! सेवं भंते! गौतम पूछे सही।  
वीरजीरा वचन में संदेह कोई नहीं।।”**

5. तीसरे गुणस्थान की अपेक्षा चौथे की स्थिति बहुत अधिक है और यह भी चारों गति में पाया जाता है। अतः चौथे गुणस्थान वाले जीव उनकी अपेक्षा अधिक है। यहाँ एक बोल और भी कह सकते हैं—चौथे गुणस्थान से सिद्ध भगवंत अनंतगुणा हैं फिर सिद्धों से पहले गुणस्थान वाले अनंतगुणा होते हैं।
6. साधारण वनस्पतिकाय के जीव, सभी मिथ्यादृष्टि हैं, अतएव पहले गुणस्थान वाले, चौथे गुणस्थान वालों से अनंतगुणा हैं। ये अनंत लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं।

**नोट : गुणस्थान स्वरूप में 1, 2, 3, 4 आदि गुणस्थानों के विवरण में 4 गुण., 5 गुण. आदि नहीं समझकर चौथा, पाँचवां आदि समझना चाहिए।**

--X-- सेवं भंते! सेवं भंते! --X--

## अठाणु (98) बोल की बासठिया

श्रीमत् प्रज्ञापना सूत्र के तीसरे पद के आधार से अठाणु बोल की बासठिया का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं-

1- गर्भज मनुष्य		सबसे थोड़े
जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	14	1 से 14
योग	15	सभी
उपयोग	12	सभी
लेश्या	6	सभी
2- इनसे मनुष्यस्त्री*		संख्यात गुणी
जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	14	1 से 14
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	12	सभी
लेश्या	6	सभी
3- बादर तेउकाय पर्याप्त		असंख्यात गुणा
जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	कृष्ण, नील, कापोत
4- पाँच अनुत्तर विमान के देव		असंख्यात गुणा
जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	1	चौथा
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	6	3 ज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल

\* 27 गुणित 27 अधिक।

5- ग्रैवेयक की ऊपर की त्रिक के देव		संख्यात गुणा
जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल
6- मध्यम त्रिक के देव		संख्यात गुणा
जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल
7- नीचे की त्रिक के देव		संख्यात गुणा
जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल
8- बारहवें देवलोक के देव		संख्यात गुणा
जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल

**9- ग्यारहवें देवलोक के देव संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल

**10- दसवें देवलोक के देव संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल

**11- नौवें देवलोक के देव संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल

**12- सातवीं पृथ्वी के नैरयिक असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	कृष्ण

**13- छठी पृथ्वी के नैरयिक असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	कृष्ण

**14- आठवें देवलोक के देव असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल

**15- सातवें देवलोक के देव असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	शुक्ल

**16- पाँचवीं पृथ्वी के नैरयिक असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	2	नील, कृष्ण

**17- छठे देवलोक के देव असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेख्या	1	शुक्ल

**18- चौथी पृथ्वी के नैरयिक असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेख्या	1	नील

**19- पाँचवें देवलोक के देव असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेख्या	1	पद्म

**20- तीसरी पृथ्वी के नैरयिक असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेख्या	2	कापोत, नील

**21- चौथे देवलोक के देव असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेख्या	1	पद्म

**22- तीसरे देवलोक के देव संख्यात गुणा\***

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेख्या	1	पद्म

**23- दूसरी पृथ्वी के नैरयिक असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेख्या	1	कापोत

**24- सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंख्यात गुणा\***

जीव के भेद	1	असंज्ञी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, कर्मण
उपयोग	4	2 अज्ञान, 2 दर्शन
लेख्या	3	कृष्ण, नील, कापोत

● चतुर्थ देवलोक के देवों से तृतीय देवलोक के देव संख्यात गुणा श्रीमत् प्रज्ञापना सूत्र, श्रीमद् जीवाजीवाभिगम सूत्र की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ, श्रीमद् भगवती सूत्र की चूर्ण, जीव समास की वृत्ति इत्यादि अनेक प्रमाणों के आधार पर चतुर्थ देवलोक के देवों से तृतीय देवलोक के देवों को संख्येयगुण मानना उचित लगता है। 'विस्तृत वर्णन हेतु देखें आगम स्तोक मंजूषा भाग-1 में '98 बोल का बासठिया' थोकड़े का परिशिष्ट। \* 5वें असंख्यात प्रमाण

**25- दूसरे देवलोक के देव असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	तेजो

**26- दूसरे देवलोक की देवियाँ संख्यात गुणी\***

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	तेजो

**27- पहले देवलोक के देव संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	तेजो

**28- पहले देवलोक की देवियाँ संख्यात गुणी**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	तेजो

\* 32 गुणित 32 अधिक।

**29- भवनपति देव असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	3	असं. पंचे. अपर्या., सं. पंचे. अपर्या., सं. पंचे. पर्या.
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**30- भवनपति देवियाँ संख्यात गुणी**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**31- पहली पृथ्वी के नैरयिक असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	3	असं. पंचे. अपर्या., सं. पंचे. अपर्या., सं. पंचे. पर्या.
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	कापोत

**32- खेचर तिर्यञ्च पुरुष असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी



**33- खेचर स्त्रियाँ\*** **संख्यात गुणी**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**34- थलचर पुरुष** **संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**35- थलचर स्त्रियाँ** **संख्यात गुणी**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**36- जलचर पुरुष** **संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

\* 3 गुणित 3 अधिक।

**37- जलचर स्त्रियाँ** **संख्यात गुणी जीव**

के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**38- व्यन्तर देव** **संख्यात गुणा**

जीव के भेद	3	असं. पंचे. अपर्या., सं. पंचे. अपर्या., सं. पंचे. पर्या.
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**39- व्यन्तर देवियाँ** **संख्यात गुणी**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**40- ज्योतिषी देव** **संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	तेजो

**41- ज्योतिषी देवियाँ** **संख्यात गुणी\***

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	11	2 औदारिक, 2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	1	तेजो

**42- खेचर नपुंसक** **संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**43- थलचर नपुंसक** **संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

● कोई-कोई जलचर स्त्रियों से ज्योतिषी देवियों को असंख्यात गुणा मानते हैं। उनके अनुसार 38वें, 39वें, 40वें व 41वें बोल में आये हुए चारों संख्यातगुण मिलकर असंख्यात गुण हो जाते हैं किन्तु ऐसा मानना असंगत है क्योंकि श्रीमद् जीवाजीवाभिगम सूत्र की सर्व जीव दशविध प्रतिपत्ति, छठी सप्तविध प्रतिपत्ति, द्वितीय त्रिविध प्रतिपत्ति आदि प्रमाणों से तिर्यञ्च स्त्रियों से देवता संख्यात गुणा होना सिद्ध होता है।

**44- जलचर नपुंसक** **संख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**45- चउरिन्द्रिय के पर्याप्त** **संख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	चउरिन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	2	औदारिक काय योग, असत्यमृषा वचनयोग
उपयोग	4	2 अज्ञान, 2 दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**46- पंचेन्द्रिय के पर्याप्त** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	2	असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त
गुणस्थान	12	1 से 12
योग	14	कार्मण काय योग को छोड़कर
उपयोग	10	केवलज्ञान, केवलदर्शन छोड़कर
लेश्या	6	सभी

**47- बेइन्द्रिय के पर्याप्त** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	बेइन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	2	औदारिक काय योग, असत्यमृषा वचनयोग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**48- तेइन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	तेइन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	2	औदारिक काय योग, असत्यमृषा वचनयोग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**49- पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	2	असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त
गुणस्थान	3	पहला, दूसरा, चौथा
योग	5	2 औदारिक, 2 वैक्रिय, 1 कार्मण
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**50- चउरिन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	चउरिन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	2	पहला, दूसरा
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	6	2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**51- तेइन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	तेइन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	2	पहला, दूसरा
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	5	2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**52- बेइन्द्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	बेइन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	2	पहला, दूसरा
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	5	2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**53- प्रत्येक शरीर बादर वन के पर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**54- बादर निगोद के पर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**55- बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**56- बादर अप्काय के पर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**57- बादर वायुकाय के पर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	4	2 औदारिक, 2 वैक्रिय
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**58- बादर तेउकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**59- प्रत्येक शरीर बादर वन के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**60- बादर निगोद के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**61- बादर पृथ्वीकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**62- बादर अप्काय के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**63- बादर वायुकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**64- सूक्ष्म तेउकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**65- सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**66- सूक्ष्म अप्काय के अपर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**67- सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**68- सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्त संख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**69- सूक्ष्म पृथ्वीकाय के पर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**70- सूक्ष्म अप्काय के पर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**71- सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**72- सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**73- सूक्ष्म निगोद के पर्याप्त<sup>●</sup> संख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**74- अभव्य जीव अनंत गुणा**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	1	पहला
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	6	3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	1 से 6

**75- प्रतिपतित सम्यग्दृष्टि<sup>■</sup> अनंत गुणा**

- बोल क्र. 54, 60 और 72, 73 निगोद शरीर की अपेक्षा समझना। 88-जीव अपेक्षा।  
 ■ प्रतिपतित सम्यग्दृष्टि में पहला और तीसरा, इन दो गुणस्थानों की संभावना लगती है। वर्तमान की अपेक्षा। 74- चौथे अनंत प्रमाण। 75-पाँचवे अनंत प्रमाण। 76, 77-आठवें अनंत प्रमाण।

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	2	पहला, तीसरा
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	6	3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**76- सिद्ध भगवंत अनंत गुणा**

जीव के भेद	0	नहीं
गुणस्थान	0	नहीं
योग	0	नहीं
उपयोग	2	केवलज्ञान, केवलदर्शन
लेश्या	0	नहीं

**77- बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्त अनंत गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**78- बादर के पर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	6	4था, 6ठा, 8वां, 10वां, 12वां, 14वां
गुणस्थान	14	सभी
योग	15	सभी
उपयोग	12	सभी
लेश्या	6	सभी

**79- बादर वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**80- बादर के अपर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	6	3, 5, 7, 9, 11, 13
गुणस्थान	3	1ला, 2रा, 4था
योग	5	2 औदारिक, 2 वैक्रिय, 1 कार्मण
उपयोग	3	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**81- बादर विशेषाधिक**

जीव के भेद	12	पहला व दूसरा छोड़कर
गुणस्थान	14	सभी
योग	15	सभी
उपयोग	12	सभी
लेश्या	6	सभी

**82- सूक्ष्म वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**83- सूक्ष्म के अपर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**84- सूक्ष्म वनस्पतिकाय के पर्याप्त संख्यात गुणा**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**85- सूक्ष्म के पर्याप्त विशेषाधिक**

जीव के भेद	1	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	1	औदारिक काय योग
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**86- सूक्ष्म विशेषाधिक**

जीव के भेद	2	सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त व पर्याप्त
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**87- भवसिद्धिक** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	14	सभी
योग	15	सभी
उपयोग	12	सभी
लेश्या	6	सभी

**88- निगोद के जीव** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	4	सूक्ष्म एके. अपर्या, पर्या. व बादर एके. अपर्या, पर्या.
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	3	1 से 3

**89- वनस्पतिकाय के जीव** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	4	सूक्ष्म एके. अपर्या, पर्या. व बादर एके. अपर्या, पर्या.
गुणस्थान	1	पहला
योग	3	2 औदारिक, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**90- एकेन्द्रिय जीव** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	4	सूक्ष्म एके. अपर्या, पर्या. व बादर एके. अपर्या, पर्या.
गुणस्थान	1	पहला
योग	5	2 औदारिक, 2 वैक्रिय, 1 कार्मण
उपयोग	3	2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन
लेश्या	4	1 से 4

**91- तिर्यञ्च जीव** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	5	1 से 5
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**92- मिथ्यादृष्टि जीव** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	1	पहला
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	6	3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**93- अन्नती जीव** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	4	1 से 4
योग	13	2 आहारक छोड़कर
उपयोग	9	3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन
लेश्या	6	सभी

**94- सकषायी जीव** **विशेषाधिक**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	10	1 से 10
योग	15	सभी
उपयोग	10	केवलज्ञान, केवलदर्शन छोड़कर
लेश्या	6	सभी



**95- छद्मस्थ जीव विशेषाधिक**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	12	1 से 12
योग	15	सभी
उपयोग	10	केवलज्ञान, केवलदर्शन छोड़कर
लेश्या	6	सभी

**96- सयोगी जीव विशेषाधिक**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	13	1 से 13
योग	15	सभी
उपयोग	12	सभी
लेश्या	6	सभी

**97- संसारी जीव विशेषाधिक**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	14	सभी
योग	15	सभी
उपयोग	12	सभी
लेश्या	6	सभी

**98- सर्व जीव विशेषाधिक**

जीव के भेद	14	सभी
गुणस्थान	14	सभी
योग	15	सभी
उपयोग	12	सभी
लेश्या	6	सभी

**इन 98 बोलों में**

सबसे थोड़ा	एक बोल
अनंत गुणा के	4 बोल
असंख्यात गुणा के	35 बोल
संख्यात गुणा के	28 बोल
विशेषाधिक के	30 बोल हैं।

**वेद की अपेक्षा**

स्त्रीवेद वाले	9 बोल
पुरुषवेद वाले	23 बोल
तीन वेद वाले	16 बोल
अवेदी वाले	1 बोल
नपुंसक वेद वाले	49 बोल

**भव्य की अपेक्षा**

एकांत भव्य के	3 (4, 75, 87) बोल
एकांत अभव्य का	1 (74वां) बोल
नो भव्य नो अभव्य का	1 (76वां) बोल
भव्य-अभव्य दोनों के	93 बोल

**शाश्वत की अपेक्षा**

अशाश्वत के	3 (24, 95, 97) बोल
शाश्वत के	95 बोल हैं।



सेवं भंते! सेवं भंते!

## नवाचार्य जीवन

### आचारक्रांति के पुरोध आचार्य प्रवर १००८

### श्री हुक्मीचंदजी म.सा.

अतीत निःसंदेह अतीव सशक्त होता है। अतीत ही दिशादर्शक एवं नवनिर्माता होता है। अतीत के प्रभाव से फहराती हुई हरी या लाल झंडियाँ ही वर्तमान की रेलगाड़ी को गतिशीलता या ठहराव देती है। अतीत की अविस्मरणीय स्मृतियों एवं अनुभूत, अमूल्य अनुभूतियों के सबल हाथ जब वर्तमान की लेखनी को दृढ़ता से थामकर उसे दिशा व गति देते हुए भविष्य के सुनहले पत्तों पर कुछ अद्भुत, निराला एवं अमिट अंकन करते चले जाते हैं तो जीवन पुस्तिका एक वधू के समान नित-नये शृंगारों से सजती हुई हर मुड़ाव के साथ अपूर्व अपूर्व सौन्दर्य से कुछ दिव्य ही छटा बिखेरती हुई चली जाती है। आज ही नहीं, चिरकाल से अतीत की स्मृतियों ने मनुष्यों के जीवन को आमूलचूल परिवर्तित कर देने में महती भूमिका निभाई है। स्वयं श्रमण भगवान महावीर ने संयम से विचलित होते हुए मुनि मेघकुमार को अपने पूर्वजन्म में हाथी के भव में अनुकम्पार्थ रखी गई सहिष्णुता का स्मरण दिलाकर उसे संयम मार्ग में अडिग बना दिया था। साध्वी राजीमती ने भी मुनि रथनेमि को अपने पूर्वजों के गौरव का स्मरण करवाकर संयम पथ पर सुस्थिर किया था। अतीत के कूप में गहरे छिपे घटना जलों को जब निमित्त के पात्र द्वारा स्मृति की मजबूत डोरियों से खींचकर वर्तमान के हाथों तक पहुँचा दिया जाता है तो न सिर्फ चित्रस्पन्दन रूप स्नान होता है अपितु आन्तरिक तृषा को समाहित करने हेतु निर्मल प्रेरणा जल भी उपलब्ध हो जाता है।

‘इतिहास’ मात्र घटना शरीरों को अक्षररूपी रसायन में ढुबाकर उन्हें दीर्घकाल तक टिकाए रखने का उपक्रम नहीं है बल्कि ‘इतिहास’

अक्षररूपी राख से ढक कर सुरक्षित रखे गये वे जीवन्त तेजोमय अंगारे हैं जो विरल आत्माओं को ज्योति प्रदान करते हैं। जिसमें अक्षरों की कृष्ण भस्म से आवृत्त ज्वलन्त प्रेरणाओं को पहचान पाने का सामर्थ्य होता है और साथ ही अपने जीवन के शुष्क कण्डों को उन ज्योतिर्मय अंगारों से छुआ देने का निर्भय पुरुषार्थ होता है।

ऐसा कौन भावनाशून्य पुरुष होगा कि जिसकी देह में अतीत की स्मृतियों से सिहरन पैदा न हो जाती हो, जिसके रोम-रोम अतीत की तरंगों से सुप्तता छोड़ उत्थित न हो जाते हों, जिसके हृदय की धड़कनें अतीत के थपेड़ों से वेगवती न बन जाती हों। साधुमार्गी संघ के बढ़ते प्रगतिचरणों के साथ ही एक बार जब उत्सुक नयनों से अतीत का सिंहावलोकन करते हैं तो उन अलौकिक महापुरुषों की दिव्य आभा इन नयनों में इस कदर समा जाती है कि प्रतिपल, प्रतिक्षण उनकी आज भी एक अलौकिक शक्ति के रूप में विद्यमानता की अनुभूति एक गहरी शांति बनकर हृदय में छा जाती है। वह अन्तस्थ समाधि प्रकाशदीप बनकर अग्रिम पथ को अनायास ही प्रदर्शित करती चली जाती है। उन महापुरुषों ने उन कठिन समयों में, दुर्गम पथों पर, कंटोली वीथियों में, पादतलों से झरते लहू की परवाह न करते हुए भी साधुमार्गी संघ के संविकास एवं संवर्धन हेतु तीर्थकर भगवन्तों द्वारा निरूपित संयम के असिधारवत् तीक्ष्ण मार्ग पर बढ़ते हुए, शिष्य वर्ग को बढ़ाते हुए स्वात्मा को तो निर्मल, पवित्र एवं आध्यात्म सुखलीन बनाया ही, जिनशासन पताका को भी दिग् दिगन्त तक फहराया। अनुकूल एवं प्रतिकूल विविध परीषहों के मध्य भी उन तत्त्वदृष्टि साधना वीरों ने तीर्थकरोपदिष्ट, गणधर प्रणीत आगम वाक्यों को सन्मुख रखते हुए शुद्ध संयम की धारा का सतत् संरक्षण करते हुए उसे अद्यावधि मौलिक स्वरूप में प्रवाहित रखा, यह उपकार भव्य आत्माओं द्वारा शतशः कृतज्ञता अभिव्यक्ति के पश्चात् भी चुकाया नहीं जा

सकता। यदि हम उन महापुरुषों के सच्चे अनुयायी हैं तो शीश झुकाकर अपने वाम कर्ण को हृदय के समीप ले जाकर सुनें, ध्यानपूर्वक सुनें-हमें भी अपनी धड़कनों में उन दिव्य पुरुषों के पद चाप अवश्य सुनाई पड़ेंगे।

साधुमार्ग- यह शब्द अनादिकाल से चली आ रही तीर्थकरों की विशुद्ध धारा का संसूचक है। आगमों में तीर्थकरों की देशना को स्थान-स्थान पर 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' कहा है। निर्ग्रन्थ अर्थात् साधु एवं प्रवचन अर्थात् उपदिष्ट मार्ग। निर्ग्रन्थ प्रभु के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन-वही साधुमार्ग है। इसी साधुमार्ग की परम्परा आज भी जिनेश्वर देवों की वाणी को आत्मसात् करते हुए जन-जन को उस पावन देशना से पवित्र बना रही है। प्रथम आचार्य आर्य सुधर्मा से चलती हुई यह साधुमार्गी परम्परा अनेक आरोहों-अवरोहों से गुजरती हुए अनेक महान् आचार्यों की जीवन सुरभि से पुनः पुनः मधमधाती हुई प्रभु वीर के 74वें पट्टधर परम पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. तक आ पहुँची।

युग कहो, वक्त कहो, समय कहो- उसका एक अपना आकार होता है- एक विशेष प्रकार के निर्माण के लिए सहयोग देता है वह। आकाशीय ग्रह नक्षत्र कुछ विशेष प्रकार की रश्मियाँ फेंकते हैं भूमण्डल पर। स्वाति नक्षत्र का योग होने पर बरसने वाला जल सीप में की मुक्ता बनकर चमकता है। ऐसे ही हरेक काल की अपनी कुछ विशिष्टताएँ होती हैं। उस काल का प्रभाव सामर्थ्य सम्पन्न व्यक्तियों में तदनु रूप शक्ति को प्रेरित कर देता है। विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी का वह समय एक क्रान्तिप्रेरक समय था, जो शिथिलता से दृढ़ता की ओर गति कराने वाला था। उसी शताब्दी में संवत् 1860 पौष शुक्ला नवमी को श्रीमान् रतनचंद्रजी चपलोत की धर्मसहायिका श्रीमती मोतीबाई की रत्नकुक्षि से वीर वसुन्धरा राजस्थान में बूंदी के समीपस्थ टोडारायसिंह नामक ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कस्बे में एक तेजस्वी

बालक का जन्म हुआ।

जन्म एक सर्वसाधारण घटना है, एक अंगूठी के समान और जीवन जो उस जन्म में मूल्य भरता है, एक नगीने के समान। जितना मूल्यवान नगीना, उतनी मूल्यवती अंगूठी। बालक का नामकरण हुआ हुक्मीचंद। हुक्मीचंद का जीवन भी तब तक एक सामान्य जीवन था जब तक उन्होंने वीतराग वाणी को पावन रसपान नहीं किया। वह माचिस की तीली मात्र एक तिनके के समान है जिसे न कभी रगड़ मिली, न कोई जलती लो का स्पर्श। सांसारिक कार्यवश बूंदी जाने पर हुक्मीचंद को ज्ञात हुआ कि यहाँ आचार्य पूज्य श्री लालचंदजी म.सा. विराजमान हैं। धार्मिक संस्कारों से प्रेरित होकर वे प्रवचन श्रवणार्थ उपस्थित हुए। वीतराग वाणी का अन्तः स्पर्श हुआ।

वक्ताओं की भीड़ में निःस्पर्श उपदेशक मिलना जितना कठिन है, उससे भी कहीं दुर्लभ होगा कोई जिन्दा श्रोता। जिस जिनवाणी ने अनन्त आत्माओं में पलक झपकते ही आमूलचूल परिवर्तन कर दिया, उस जिनवाणी का चमकता हुआ वेगवान अग्निपिंड ऊपर आ पड़े और भीतर में वैराग्य की आग न चमके तो वह जिन्दादिली कैसी। हुक्मीचंदजी विरल जिन्दादिल श्रोता थे। वीतराग वाणी मात्र उनके चित्त का रंजन नहीं कर रही थी, बल्कि उनके आत्मनेत्रों में तत्त्वदृष्टि को पैदा करने वाला अंजन लगा रही थी। गुरुदेव की वाणी उनके भीतर इस तरह समा गई थी जैसे फीके घेवर में चासनी। अब किसी प्रकार से उस वाणी का रस उनसे अलग नहीं किया जा सकता था।

निर्णायक वृत्ति वाले मानव की सफलता की ऊँचाइयों का स्पर्श कर पाते हैं। द्वन्द्व में उलझे डोलायमान चित्त वाले इंसान समुचित अवसर का लाभ उठाने में असमर्थ रह जाते हैं। हुक्मीचंदजी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब मुझे शीघ्रातिशीघ्र संयम स्वीकार करके

आत्मकल्याण साधना है। बूंदी से घर पहुँचे। घर वाले सगाई की तैयारियों में लगे थे। हुक्मीचंदजी ने उन्हें अपने भविष्य का निश्चय बताया। पारिवारिक जनों की ओर से समझाने-बुझाने और मनाने की भरपूर कोशिशें हुईं लेकिन हुक्मीचंदजी का दृढ़ संकल्प अविचल रहा। अन्ततः उन्हें अनुमति प्राप्त हुई एवं संवत् 1879 में मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को बूंदी में ही संयम पथ पर चरण विन्यास हुआ।

संयम ग्रहण के अनन्तर श्री हुक्मीचंदजी म.सा. ने आगम-ज्ञान की गहराईयों में अनुप्रवेश करके विशिष्ट रहस्यों को हृदयंगम किया एवं साथ ही अपने संयमी जीवन में उनका प्रायोगिक रूप उतारने लगे। ज्ञान किसी सम्राट के मुकुट, राजदण्ड, वेशभूषा या आभूषण के समान कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो अपनी शोभा, प्रभाव या वैशिष्ट्य अभिव्यक्त करने के लिए हो, लेकिन ज्ञान उस धड़कते हृदय, चिन्तनप्राण मस्तिष्क एवं प्रवाहशील रक्त के समान है जो जीवन की आन्तरिक स्थिति, शक्ति एवं विकास का आधार है। श्री हुक्मीचंदजी म.सा. ने ज्ञान को मात्र ओढ़ा नहीं, ज्ञान को अन्तर्भू तक पहुँचाया। फलस्वरूप उस ज्ञान ने उनके जीवन की कली-कली को प्रफुल्लित कर दिया। ज्ञान उनके अभिमान का कारण नहीं, विनय का बीज बना। ज्ञान उनके मस्तिष्क का भार नहीं, जीवन का संचालन ऊर्जा स्रोत बना। ज्ञान पर तिरस्कार का साधन नहीं, आत्मपरिष्कार का कारण बना। परतों में दबी आत्मध्वनि फूट पड़ी एवं आगम के दिशादर्शक यंत्र ने जीवन की जहाज को शुद्धाचार की दिशा दिखाई। गुरुचरणों में आत्मभावों को निवेदन किया एवं गुरु द्वारा शुद्धाचार पालन की अशक्ति अभिव्यक्त करने पर गुरुचरणों में वंदनापूर्वक विक्रम संवत् 1890 मार्गशीर्ष कृष्णा एकम् को साधना की एक कठिन राह पर बढ़ चले।

बाहर से प्रवृत्ति में समानता दृष्टिगत होने पर भी अंतर्निहित

भावनाओं, उद्देश्यों के आधार पर ही प्रवृत्ति की शुद्धता-अशुद्धता का निर्धारण होता है। डाकु के चाकू चलाने एवं शल्य क्रिया करने वाले चिकित्सक द्वारा चलाये जाने वाले शस्त्र में रहा फर्क हम अच्छी तरह समझते हैं। कसाई बकरे को खिलाएँ-पिलाएँ एवं बकरे की माँ उसे दुग्धपान कराये-इसका अन्तर समझना कठिन नहीं है। आंतककारी शस्त्राभ्यास करें और सैनिक शस्त्राभ्यास करें इसके भेद को कौन नहीं पहचानता। अविनय, अभिमान, स्वार्थ, पदलिप्सा, स्वच्छन्दता, अपने दोष को छिपाने की भावना तथा मिथ्या आग्रह से गुरु का तिरस्कार करके स्वयं के वर्चस्व को स्थापित करने हेतु गुरु का परित्याग करे एवं तीर्थंकर प्ररूपित शुद्ध धर्म की सात्विक आत्मसाधना की पवित्र भावना से सरोबार होकर गुरु के प्रति सतत् कृतज्ञता का भाव रखते हुए विनय, निराभिमानता, निर्लिप्तता, शुद्ध संयम की निर्मल विचारधारा एवं वर्धमान संवेग भावों को आकार देने हेतु अपने चरणों को गति देवे-इन दोनों का अन्तर स्पष्टतः अनुभूत किया जा सकता है।

पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. का उद्देश्य आत्मसाधना की उच्चतम दशा को प्राप्त करना था। उनमें न यशकीर्ति की लालसा थी, न ही पदलिप्सा या स्वच्छंद मनोवृत्ति। उन्हें अपनी आत्मशुद्धि से प्रयोजन था। आत्मशुद्धि की चर्चा करना एक बात है और वस्तुतः गहरे अन्तःकरण से मोक्ष प्राप्ति की ललक एवं संसार से निर्वेद रहना दूसरी बात है। प्लास्टिक के बने पौधों में कभी वनस्पति के पत्र पुष्पों-सी आभा प्रकट नहीं हो सकती, न ही वे प्राणवायु (ऑक्सीजन) को प्रदान करने में समर्थ होते हैं। पूज्यश्री ने अपनी साधना को सबल बनाने हेतु देहभाव से उपरीत की ओर बढ़ाने हेतु कुछ कठिन तप प्रारंभ कर दिए। वे बेले-बेले पारणा करते हुए विचरण करने लगे। उनके मिठाई एवं तली वस्तुओं का जीवनपर्यन्त प्रत्याख्यान था। जीवनभर के लिए 13 द्रव्यों के आहार के अतिरिक्त सभी द्रव्यों का त्याग कर दिया।

प्रतिदिन 200 णमोत्थु णं के माध्यम से वे सिद्धों एवं तीर्थकरों की स्तुति करते। विशिष्ट तपाराधना से उनकी दिव्य आभा दिव्यतर बनती गई। आपके त्यागमय जीवन के प्रभाव से पूज्य गोविन्दरामजी म.सा. के शिष्य दयालजी म.सा. भी आपके श्रीचरणों में आ गये।

जावद-मध्यप्रदेश का एक छोटा-सा शहर, जिसे इस सम्प्रदाय में 'गादी का गाँव' नाम से जाना जाता है। उस समय वहाँ के तत्त्वज्ञ श्रावकरत्न श्री बोथलालजी बंबोरिया ने अन्य प्रमुख श्रावकों के साथ मिलकर 21 नियम बनाये। जो मुनि उन नियमों का पालन करते, उन्हीं को वे वंदन नमस्कार आदि करते थे। पूज्यश्री एवं दयालजी म.सा. का जब वहाँ पदार्पण हुआ तो प्रारंभ में वहाँ के श्रावकों ने वंदनादि नहीं की किन्तु कुछ ही दिनों में पूज्यश्री के आचार-विचार से इतने प्रभावित हो गये कि पूज्यश्री को ही अपने गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया।

नीमच के हजारीमलजी पोरवाल की पुत्री रंगूजी का विवाह धमोतर गाँव में हुआ। संयोगवश विवाह के कुछ ही समय बाद काल ने उनके पति, सास एवं ससुर सभी को एक-एक करके अपने गाल में समा लिया। शील एवं देह के सौन्दर्य की देवी रंगूकँवर अब घर में अकेली रह गई। एकदा गाँव के ठाकुर शेरसिंह की विकारी दृष्टि रंगूजी पर पड़ गई। कामवासना बुद्धि से सदसत् के विवेक को विदा कर देती है। शेरसिंह ने मौका पाकर रंगूजी के घर को सैनिकों से घिरवा लिया। रंगूजी को जैसे ही इसकी भनक पड़ी, वे शील की रक्षा हेतु पिछली खिड़की से कूदने लगी। उसी समय एक अज्ञात व्यक्ति ऊँट लेकर खड़ा हुआ एवं रंगूजी को कहा-बहन, घबराओ मत। निश्चत होकर इस ऊँट पर सवार हो जाओ। ऊँट पर सवार होते ही पलक झपकते ही सामने नीमच पहुँच गयी। रंगूजी को पीहर के घर जाने के लिए उतारा एवं जैसे ही रंगूजी उतरी, ऊँट एवं वह व्यक्ति

दोनों गायब। इस पंचम आरे में भी देव शीलवती की रक्षा करने के लिए तत्पर है। चाहिए भीतर से शुद्ध शील का सद्भाव।

रंगूजी के भीतर वैराग्य प्रकट हो गया। वे संयम की राह देखने लगी। पारिवारिकजनों की अनुमति मिली। उस समय पूज्यश्री नीमच ही विराजमान थे। रंगूजी हर्षविभोर होकर पूज्यश्री के चरणों में पहुँची एवं संयम प्रदान करने हेतु निवेदन किया। कम से कम तीन साध्वियों के होने पर ही साध्वियों के विचरण का नियम है। तीन न होने से रंगूजी ने स्वयं दीक्षा ली एवं संकल्प किया कि जब तक तीन का कल्प पूर्ण न हो जाए तब तक आटा, आंवला, हल्दी, छाछ एवं धोवन के अलावा अन्य वस्तुओं को ग्रहण नहीं करूँगी। पूज्यश्री विचरण करते हुए रामपुरा पधारे। वहाँ सुन्दरबाई नामक बहन की भावना संयम स्वीकार करने की थी किन्तु पारिवारिकजनों ने उसे रोकने के लिए पाँवों में बंधन डाल दिये। मोह के पोषण में सुख मानने वाली अज्ञानी दुनिया अमोह के अलौकिक सुख को क्या जाने। वह तो अपनी संतान को उसी मोहजन्य तथाकथित सुख में डुबाना चाहती है। वे माता-पिता धन्य हैं जो अपनी संतानों को सच्चे सुख की राह पर पीठ थपथपाकर आगे बढ़ाते हैं। पूज्यश्री का भिक्षा के निमित्त सुन्दरबाई के घर पधारना हुआ। षट्काय जीवों के प्रति दया से परिपूर्ण नजरें स्वाभाविक रूप से जैसे ही सुन्दरबाई पर पड़ी, बंधन उसी प्रकार टूट गये जैसे भक्तामर स्रोत रचना के समय जेल के ताले। सुन्दरबाई एवं अन्य बहन नवलबाई की दीक्षा होने पर रंगूजी का तीन का कल्प पूरा हो गया।

पूज्यश्री के नाथद्वारा विराजते हुए प्रवचन के समय ही आकाश से चांदी के सिक्कों की वर्षा होने लगी। वह अद्भुत विस्मयकारी दृश्य तीर्थकर भगवन्तों के समय ही न सिर्फ कल्पना अपितु अनुभूति कराने वाला था।

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पूज्यश्री हुक्मीचंदजी म.सा. के श्रीचरणों में मोतीसिंहजी म.सा., तेजसिंहजी म.सा. आदि अनेक मुनि एवं श्री खेताजी म.सा., नंदकंवरजी म.सा. इत्यादि अनेक साध्वियाँ समर्पित होती गई। अनेक दीक्षाएँ भी हुई। विचरण करते हुए पूज्यश्री थली प्रान्त की प्रसिद्ध नगरी बीकानेर पधारे। बीकानेर में माघ शुक्ला पंचमी, विक्रम संवत् 1907 को चार मुमुक्षु भाईयों की दीक्षा का प्रसंग था। संयोग से दीक्षा से पूर्व किये जाने वाले दीक्षार्थी के मुंडन हेतु पाँच नाई उपस्थित हो गये। चार भाईयों के मुण्डन हेतु चार नाईयों को कार्य मिल गया लेकिन पाँचवाँ नाई खिन्न मन से बैठा था। दुःखी होते हुए उस नाई को सालगरामजी अग्रवाल ने देखा। नाई की उदासी का कारण मालूम पड़ने पर सालगरामजी ने निश्चय कर लिया कि मुझे भी इसी अवसर पर दीक्षा ग्रहण करना है। निराश नाई को कहा-भाई, क्यों विचार करता है। ले, मेरा मुंडन कर। नाई की आँखों में चमक आ गई। खुशी एवं आश्चर्य से अभिभूत होते हुए उसने मुंडन प्रारम्भ कर दिया। पारिवारिकजनों को भी सालगरामजी ने समझाकर उनसे दीक्षा हेतु अनुमति प्राप्त कर ली। दीक्षा समारोह में चार चाँद लग गये। चार की जगह पाँच दीक्षाएँ सम्पन्न हुई।

दीक्षाओं के इस भव्य अवसर पर पूज्यश्री ने चतुर्विध संघ को संदेश हेतु ये भाव अभिव्यक्त किये- आत्मसाधना को विशुद्ध बनाये रखने के पवित्र उद्देश्य से गति प्रारम्भ हुई। संयोगतः मुनि श्री दयालजी म.सा. आदि मुनियों को सम्मिलन भी होता गया। मुनि श्री शिवलालजी म.सा. आदि की दीक्षाएँ हुई, आर्याश्री रंगूजी म.सा. आदि ने भी संयम स्वीकार किया। आत्मशोधन एवं आत्मसाधना में ही आन्तरिक अभिरुचि होने पर भी संघीय जिम्मेदारी का अनुभव करते हुए मैं अब तक यथाशक्ति यथामति आवश्यक व्यवस्थाओं को संभालता रहा एवं मुनियों की सारणा, वारणा, धारणा में प्रवृत्त रहा। आज संघ एक

विशाल रूप ग्रहण कर चुका है। पंडित मुनि श्री शिवलालजी म.सा. विभिन्न संघीय कार्यों को संभालने में समर्थ हो गये हैं। मेरी इच्छा है जीवन के इस संध्याकाल में मैं संघीय जिम्मेदारियों से मुक्त होकर विशेष रूप से निर्लिप्त रहकर आत्मस्वरूप की अनुभव दशा में लवलीन बनूँ। अतः मैं संघ संचालन संबंधी समग्र उत्तरदायित्व पंडितरत्न मुनि श्री शिवलालजी म.सा. को सौंपता हूँ। वे तीर्थकर देवों की आज्ञा को सन्मुख रखते हुए मुनि मण्डल की सारणा-वारणा-धारणा करते हुए शुद्ध आचार की धारा को गतिशील रखें।

पूज्यश्री की उक्त उद्घोषणा को जनता ने हृदय से स्वीकार किया। युवाचार्य पद की प्रतीक रूप चादर पूज्यश्री द्वारा पंडित मुनि श्री शिवलालजी म.सा. को ओढ़ाई गई। मुनिवर्ग ने भी अत्यंत आह्लाद भाव से पूज्यश्री के निर्देश को स्वीकार करते हुए भावी आचार्य के प्रति अनन्य आस्था अभिव्यक्त की। साध्वियों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व प्रमुख साध्वियों पर ही रहा।

उत्तरदायित्व सौंप देने के पश्चात पूज्यश्री विशेषतः लोक संसर्ग से मुक्त होकर साधनालीन रहते। अनेकशः किसी प्रश्नकर्ता को युवाचार्यश्री से पूछने का संकेत कर देते। नित्य नियम, स्वाध्याय, ध्यान आदि साधना पद्धतियों को आराधित करते हुए जो अवकाश मिलता उसमें आगमों के आलेखन का कार्य करते। उस समय मुद्रण का इतना जोर-शोर नहीं था जितना कि आज है। हाथ से लिखकर ही शास्त्रों की प्रतियाँ बनाई जाती एवं उन्हें अनमोल निधि के समान बड़े ही यत्न से रखा जाता। आज पुस्तकों एवं ग्रंथों की जिस तरह से बेकद्री हो रही है, यह अन्धाधुंध मुद्रण का ही परिणाम है। पूज्यश्री के हस्ताक्षर बहुत ही सुंदर थे। उनके द्वारा लिखित कितने ही आगम काल एवं क्षेत्र की भूलभूलैया में खो से गये हैं, लेकिन आज भी इनके सुंदर अक्षरों से सजे कुछ पृष्ठ मौजूद हैं।

‘अबलं सरीरं’- श्री उत्तराध्ययन सूत्र के चतुर्थ अध्ययन का यह सत्य घोष है। शरीर निर्बल है। समय का प्रवाह शरीर से इस स्वभाव को अभिव्यक्त कर देता है। शैशव और यौवन जिस सत्य को छुपाने में कदाचित् सफल होकर भले ही अभिमान से उन्मत हो जायें, किन्तु वाधक्य सारे आवरणों को एक झटके से तोड़कर चिरकालिक अमर सत्य को अनावृत्त कर देता है। शरीर की निर्बलता तब उन्मुक्त एवं भयावह अट्टहास करने लगती है। संत प्रारम्भ से ही इस सच से परिचित होते हैं। अतः वे निर्बल को सबल बनाने के मिथ्या प्रयोगों से स्वयं को धोखा नहीं देते। शरीर में अपनी निर्बलता की देवी नृत्य करने लगे, इससे पूर्व ही वे अपनी आत्मा को इतना सबल बना लेते हैं कि देह में रहकर भी विदेह भाव अनुभव प्रकाशित हो उठता है। पूज्यश्री के अन्तर्हृदय में श्री आचारांग-सूत्र के वाक्य ‘इच्चैएहिं विरूवरूवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहायमाणेहिं आयट्ठ सम्मं समणुवासि ज्जासि’ (जब तक पाँच इन्द्रियों की ज्ञान शक्ति हीन न हो तब तक आत्मार्थ को सम्यक् प्रकार से वासित कर लो) का सार बारम्बार चमकता रहता था। फलस्वरूप जनसाधारण को अपने नाम से ही प्रकम्पित कर देने वाली मृत्यु के आलिङ्गन हेतु वे पूर्णतः निर्भय थे। शरीर जैसे-जैसे अपने स्वभाव को अभिव्यक्त करता जा रहा था, पूज्यश्री उतने-उतने अपने शुद्ध स्वभाव के समीप पहुँचते जा रहे थे। अन्ततः जावद की धरा पर आलोचना प्रतिक्रमण संलेखना स्वीकार करके विक्रम संवत् 1917 वैशाख शुक्ला पंचमी, मंगलवार को पिछली रात्रि में पूज्यश्री ने इस हाड-मांस के पुतले से स्वयं को विलग कर लिया।

निकट मोक्षगामी पूज्यश्री हुक्मीचंद म.सा. के तप, तेज एवं साधना के दिव्य प्रभाव से यह सम्प्रदाय निरन्तर तीर्थंकर देवों की निर्ग्रंथ श्रमण संस्कृति की जलती मशाल को थामकर स्व पर कल्याण के जिनोक्त महापथ पर आरूढ़ है।

## विद्वत् शिरोमणी आचार्य प्रवर १००८ श्री शिवलालजी म.सा.

सब कुछ कभी बाहर से प्राप्त नहीं होता। बहुत कुछ हमेशा भीतर ही रहता है और बहुत कुछ भीतर रहता है तभी थोड़ा-सा बाहर का झटका भी कुछ पैदा कर जाता है। जिस जमीन में पानी का प्रवाह गतिशील है तो थोड़ी-सी खुदाई कुआँ बना देती है और जमीन ही गहरे तक सूखी है तो सैकड़ों फीट खुदाई करने वाली मशीन भी क्या कर पायेगी।

नीमच के समीपवर्ती धामनिया गाँव में श्री टीकमचंदजी सा. बोड़ावत की धर्मसहायिका श्रीमती कुन्दनबाई ने संवत् 1867 पौष शुक्ला दशमी को एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। नामकरण हुआ-शिवलाल। नैसर्गिक ग्राम्य परिवेश में बाल्यकाल बीता, किशोरावस्था भी निकल गई। यौवन देह एवं मन पर अपने चिह्न अंकित करने लगा। शारीरिक बल एवं मानसिक बल अभिवृद्ध होने लगा। इतने में ही वैराग्य एवं तप से प्रदीप्त तपस्वी पूज्यश्री हुक्मीचंदजी म.सा. का धामनिया ग्राम में पधारना हुआ। ग्रामीण जनता जिनवाणी के अमृतरस का पान करने हेतु पूज्यश्री की चरण सन्निधि में उपस्थिति हुई। शिवलालजी भी पहुँचे। अग्नि सभी पदार्थों का समान रूप से स्पर्श करती है- राख का, लौह का, काष्ठ का, माचिस की तीली का एवं घृत से भरे दीप की स्नहे सिक्त बाती का। एक पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, एक कुछ गर्म होकर फिर ठंडा हो जाता है, एक सतत् स्पर्श के बिना अग्नि का प्रभाव नहीं ले पाता, एक कुछ समय जलकर बुझ जाती है और एक वह बाती जो एक ही स्पर्श से न सिर्फ स्वयं सतत् ज्योतिर्मय रहती है अपितु अन्यान्य अनेकों को भी उस पावन ज्योति का पवित्र प्रसाद प्रदान करती है। बाहर की चिंगारी उसे ही प्रज्वलित कर सकती है

जो भीतर स्वयं के स्नेह से समृद्ध है। दीप के भीतर बहुत कुछ होता है तो चिंगारी का एक स्पर्श भी काफी होता है जलने के लिए। शिवजी उच्च जाति, उच्च कुल एवं पूर्व में संजाये उत्तम संस्कारों के स्नेह से सरोबार थे। प्रतिक्षा भी किसी उड़ती हुई आग की, जैसे ही प्रवचन की चिंगारी पूज्यश्री के श्री मुख से उछलकर शिवलालजी के कानों से होते हुए हृदय पर गिरी कि भीतर का कोना-कोना वैराग्य की ज्योति से जगमगा उठा। काम की आग को पछाड़ कर वैराग्य की आग ने दिल पर आधिपत्य जमा लिया। पारिवारिक जनों से संयम ग्रहण की अनुमति मांगने पर वही हुआ जिसकी कल्पना की जा सकती है। घर में रोक रख पाने के हर संभव उपाय। मगर वैराग्य की धधकती ज्वालाओं को लम्बे समय तक रोका नहीं जा सका एवं विक्रम संवत् 1891 मार्गशीर्ष शुक्ला एकम् को रतलाम शहर में पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. की चरण शरण में अपने लाड़ले का सौंपकर माता-पिता आदि को भी अन्ततः हार्दिक आह्लाद का अहसास हुआ। संतान की शादी करने एवं दीक्षा देने में यह भी बड़ा फर्क है कि प्रायः शादी करने से पहले खुशी होती है और बाद में गम एवं दीक्षा देने से पहले गम होता है और बाद में खुशी।

मुनि श्री शिवलालजी म.सा. को दीक्षा देकर पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. ने उन्हें श्री दयालजी म.सा. का शिष्य बनाया। पूज्यश्री ने आजीवन अपने शिष्य बनाने का त्याग ले रखा था। विराम रहित वर्धमान विनय, विरक्ति, विवेक, विद्वता एवं विशुद्धचार की विशिष्टताओं के विपाक स्वरूप मुनिश्री शिवलालजी म.सा. को विक्रम संवत् 1907 की माघ सुदी पंचमी में वीर वसुंधरा विक्रम नगर (बीकानेर) में वीतराग प्रभु वीर के विशिष्टतम तृतीय पद के अधिकारी के रूप में पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. द्वारा विराट दीक्षा प्रसंग पर विशाल जनसमूह के विमध्य विख्यापित किया गया।

पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. के स्वर्गवास के अनन्तर आचार्य श्री शिवलालजी म.सा. ने श्री संघ का सुन्दर रीति से संचालन किया। साधु समुदाय की एक निश्चित नियामवली होती है जिसे 'समाचारी' कहा जाता है। आचार्य श्री शिवलालजी म.सा. ने सुदीर्घ दृष्टि के साथ साधु समुदाय की संयम विशुद्धि को लक्ष्य में रखते हुए 72 कलमों की समाचारी का निर्धारण किया, जिसका पालन समय-समय पर मध्यवर्ती आचार्यों द्वारा किये गये परिवर्धन संशोधन के साथ आज भी हो रहा है।

आचार्य श्री शिवलालजी म.सा. दीर्घ तपस्वी थे। निरन्तर तैंतीस वर्षों तक उन्होंने एकान्तर तप (एक दिन उपवास व एक दिन आहार) की आराधना की। तपस्या में अद्भुत शक्ति होती है। तपस्या के अद्वितीय महत्व को नहीं समझने वाले अनेकशः यह कहते हुए पाये जाते हैं कि 'भूखे रहने से क्या फायदा है, शरीर को कष्ट देने में कौनसा धर्म है इत्यादि। श्री दशवैकालिक सूत्र में 'देहदुक्खं महाफलं' कहकर जो बताया है। सम्यग्ज्ञानपूर्वक देह के कष्ट को सहन करना महान् फल देने वाला है। इसका बड़ा ही गहन एवं विशिष्ट अर्थ है। इसी आगम में यह भी बताया गया है कि शारीरिक साता के लिए आकुल-व्याकुल रहने वाले को सुगति मिलना कठिन है। शरीर के कष्ट को सहन करने का तात्पर्य है मोहवृक्ष को जड़ मूल से उखाड़ने का पुरुषार्थ करना। शरीर प्रत्येक व्यक्ति के मोह का केन्द्र होता है। उसके प्रति मानव का अनन्य लगाव होता है। उस शरीर को स्वयं से भिन्न अनुभव करते हुए देह की वेदना होने पर भी प्रसन्न एवं आनन्दित बने रहना भी कोई साधारण साधना नहीं है। थोड़े-से सिरदर्द, पेटदर्द, अजीर्ण, सर्दी-खांसी, बुखार या कमजोरी में ही व्यक्ति का चेहरा उतर जाता है। हल्की-सी शारीरिक वेदना में वह शरीर की फिक्र करता हुआ नज़र आता है। एक के बाद एक डॉक्टर बदलता



हुआ एवं पैसे को पानी की तरह बहाता हुआ वह येन-केन प्रकारेण शरीर को स्वस्थ करने का यत्न करता है। तपस्या शरीर के प्रति रहे इस महामोह को तोड़ने की साधना है। तपस्या के प्रभाव से आत्मा में अपूर्व तेज प्रकट होता है। तपस्या आत्मविश्वास को दृढ़ीभूत करती है। तपस्या से इन्द्रिय विजय में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। तपस्या से देह निरोग, मन निर्विकार एवं आत्मा निर्मल बनती है। तपस्वी की महिमा एवं पूजा मनुष्य तो क्या सुरलोक के देवता भी करते हैं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने स्वयं अपने साधना काल में घोरतिघोर एवं दुष्कराति दुष्कर तपश्चरण किया था। शरीर की परवाह न करते हुए उन्होंने कर्मशत्रुओं को तपस्या शस्त्र से परास्त कर डाला था। जिनशासन में धन्ना अणगार आदि एक से बढ़कर एक तपस्वी हुए हैं। हुक्म सम्प्रदाय के इस महाप्रसाद की नींव भी पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. जैसे महान् तपस्वियों के तप से निर्मित है। आचार्य श्री शिवलालजी म.सा. ने भी वर्षों तक तपाराधना करते हुए शासन की शोभा को चौगुना बढ़ाया और आज तक यह आचार्य परम्परा तपस्वी महापुरुषों से सुशोभित होती रही है।

धीरे-धीरे वृद्धावस्था अपने पांव पसारने लगी। यह अनुभव करते हुए आचार्य श्री शिवलालजी म.सा. ने संघीय उत्तरदायित्व संवत् 1925 पौष शुक्ला सप्तमी को जावद में मुनि श्री उदयसागरजी म.सा. को सौंप दिया एवं कतिपय वर्षों तक विशेष रूप से आत्मनिष्ठ होकर अन्ततः आलोचना प्रतिक्रमणपूर्वक संधारा करते हुए संवत् 1933 की पौष शुक्ला छठमी को जावद में इस औदारिक देह का परित्याग कर दिया।

## परम प्रतापी आचार्य प्रवर १००८ श्री उदयसागरजी म.सा.

तीन सौ साठ तिथियों में शरद पूर्णिमा का अपना एक अलग ही स्थान है। शरद् ऋतु में नभ बादलों से रहित रहता है। सरोवरों में रहा जल भी विमल रहता है। अनेक वैद्य शरद पूर्णिमा की रात्रि को जंगलों में औषधीय महत्त्व की जड़ी-बूटिया लेने जाते हैं। शरद पूर्णिमा को लाई गई वनौषधियों का विशिष्ट प्रभाव होता है। अनेक ग्राम-शहरों में लोग शरद पूर्णिमा को खीर बनाकर रात्रि भर चाँदनी में रखते हैं एवं अगले दिन उसका पान करते हैं ताकि देह निरोग रहे। शरद पूर्णिमा की रात्रि की चन्द्र ज्योत्सना में लोग सूई में धागे को बार-बार पिरोते एवं निकालते रहते हैं ताकि नैत्र दृष्टि स्वस्थ रहे। शरद ऋतु में निकाला गया गोघृत विशिष्ट गुणकारी होता है। आनन्द श्रावक शरद ऋतु में निकले गोघृत के सार को ही वर्ष भर ग्रहण करते थे। ऐसी प्राकृतिक गुण सम्पन्न तिथि शरद पूर्णिमा (आसोज सुदी पूर्णिमा) को संवत् 1876 में जोधपुर शहर के खींवेसरा परिवार में नथमलजी की धर्मपत्नी जीवीबाई की कुक्षि से एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ। नामकरण हुआ उदयचन्द्र। बालक उदयचन्द्र वय की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ पन्द्रहवें वर्ष के सोपान पर आ खड़ा हुआ। वह युग बाल विवाह का युग था। 18 वर्षों का होने पर ही बालिग या विवाह योग्य समझे जाने का उस समय कोई कानून नहीं रहा होगा और रहा भी होगा तो कड़ाई से लागू नहीं था। पंद्रह वर्ष तो बहुत ज्यादा हो गये, पालने से झूलते बच्चों को हाथ में लेकर फेरे दिलवा दिए जाते थे और बारह-तेरह वर्ष के होने पर 'गौना' (लड़की को पीहर से ससुराल में लाना) हो जाया करता था। उदयचन्द्रजी की सगाई भी जोधपुर के ही दौलत-रूपचंदजी डागा की पुत्री अणछीबाई से हो गई। विवाह संवत् 1891 पौष शुक्ला एकादशी को होना निश्चित हुआ।

डागाजी का घर खूंटो की पोल में था। विवाह के प्रसंग पर खूंटों की पोल पर ही तोरण द्वार सजाया गया। खींवेसरा परिवार की बारात के साथ वर राजा उदयचन्द्र विवाह के समय धारण की जाने वाली पारम्परिक वेशभूषा एवं तुरा किलंगी सहित पगड़ी के साथ शोभित होते हुए घोड़ी पर सवार होकर खूंटो की पोल तक पहुँचे।

भारतीय संस्कृति रस्मों और रीति-रिवाजों से भरी हुई है। हर रस्म का कोई इतिहास या कारण रहा है। मानव की यह विडम्बना है कि वह रस्मों के कलेवर को पकड़कर रखता है भले ही उसमें से प्राण निकल गये हो। रस्मों को क्यों अदा करने वाले ज्यादातर लोग यह नहीं जानते कि उन रस्मों को क्यों अदा किया जा रहा है। विवाह पद्धति में भी ऐसे ही अनेकानेक (रिवाज) जुड़े हुए हैं। उनमें से एक है वर राजा का स्वागत करते हुए सासूजी द्वारा तिलक लगाने के बाद भावी जवाईं का नाक पकड़ने की कोशिश करना। वर को पहले ही सिखा दिया जाता है कि सावधान रहना, सासूजी जैसे ही नाक पकड़ने लगे सिर पीछे कर लेना एवं नाक पकड़ में मत आने देना। उदयचन्द्र खींवेसरा की सास स्वागतार्थ उपस्थित हुई। वर एवं वधू दोनों पक्ष के लोग दृष्टि टिकाये हुए थे। सास ने थाली में रही स्वागत सामग्री से दायें हाथ की अनामिका अंगुली के छोर से गीले कुंकुम का स्पर्श किया एवं उदयचन्द्र के मस्तक पर तिलक के रूप में लगाया। फिर अंगुलियों व अंगूठे के बीच सूखे चावलों को लेकर अंगूठे से उन चावलों को तिलक पर चिपकाया, कुछ शेष अक्षतों को जँवाईजी के सिर पर उछालते हुए उन्हें बधाया, हथेली को झट से जँवाईजी का नाक पकड़ने हेतु नीचे किया। उदयचन्द्रजी भी उतने ही सावधान थे। सास का हाथ नाक तक पहुँचे, उससे पूर्व ही झटके से उन्होंने अपने सिर को पीछे की ओर खींच लिया। सिर पर बंधा साफा उस झटके को न झेल सका एवं एकदम से नीचे आ गिरा। एक क्षण के लिए स्तम्भित

से होकर अगले ही क्षण इस दृश्य का रस लेते सगे-सम्बन्धियों, मित्रों की एक साथ हंसी फूट पड़ी। माहौल विनोदपूर्ण हो गया। कुछ ही क्षणों में हास्य से तृप्त हो जाने पर मित्रगण गिरे हुए साफे को उठाकर चिरंजीव उदयचन्द्र के सिर पर पुनः रखने लगे पर उदयचन्द्रजी ने नीचे गिरे हुए साफे को पुनः सिर पर रखे जाने से साफ मना कर दिया। जिंदगी पानी पर तैरती बतख की तरह पलक झपकते ही दिशा बदल लेती है।

अघोद्वारों से प्रवाहित होने को चोट मारता वीर्य प्रवाह ऊर्ध्वगामी बनकर सहस्रार चक्र को स्पन्दित करने लगता है। रागान्धता की निम्नस्तरीय विचारधाराएँ वैराग्य के दिव्य प्रकाश का रूख अपना लेती हैं। अपनों के प्रीत के आदान-प्रदान में व्यस्त नेत्र अपने भीतर बसे स्व को निहारने में ही खो जाते हैं। चुलबुलाते और हंसते-हंसाते होंठ और जुबां मौन की अपूर्व शांति के अनोखे अहसास को निश्चल और निष्पन्द बन जाते हैं। अनुराग की ऊष्मा से तेज होते श्वास और निःश्वास विरक्ति की शीतलता से मन्द और सूक्ष्म हो जाते हैं। राग की लालिमा वैराग्य की शुक्ल आभा में संक्रांत हो जाती है। अपनेपन के विस्तार के लिए धड़कता हुआ दिल अपने आपकी वास्तविकता को जानने के द्वार पर दस्तक देने लगता है और यह सब तब होता है जब या तो कोई अरिष्टनेमि जैसा हो और या कोई उदयसागर जैसा। हाँ, उदयचन्द्र अब भावों से मुनि उदयसागर बनने की राह पकड़ चुका था। श्रेष्ठ भावों की पैदाइश को कोई भी वेश, क्षेत्र या वातावरण रोक नहीं पाता। दूल्हे को वेश, विवाह का मण्डप, घोड़ी की सवारी, वाद्ययंत्रों की धुन, षड्रस भोजन की सुगन्ध, कामिनियों के गीत, दुल्हन का आकर्षक प्रेम, ... यह भी कोई वैराग्य उत्पन्न होने की जगह है..... ..जी हाँ, बेशक है अगर वह उदयसागर है। मित्रों! जो पगड़ी एक बार नीचे गिर चुकी है, फिर वह सिर पर नहीं चढ़ेगी। अब सिर पर वैराग्य

रहेगा और पैरों में संसार। (सच है जिसके शीश पर वैराग्य होता है, उसी के चरणों में संसार लौटता है) भला हो श्वश्रुदेवी का जिनके प्रभाव से यह संसार की पाग नीचे गिर गई।

-उदयचन्द्र! यह क्या कहते हो? तुम्हें क्या हो गया है। देख तेरी दुल्हन सोलह शृंगार सजकर तेरा इन्तजार कर रही है। उसका क्या हाल होगा। ये इतने बाराती और रिश्तेदार आए हैं, ये क्या कहेंगे। तू ऐसी कैसी बहकी-बहकी बातें करने लग गया।

माँ! बहकी-बहकी बातें मैं कल तक करता था। आज मैं सच्ची-सच्ची बात कह रहा हूँ। माँ तेरा दूध वैराग्य के शंख पात्र से सुशोभित हो, राग के कांस्य पात्र से नहीं। आज मेरे आँखों के जाले कट गये हैं। मुझे महसूस हो रहा है कि मुझे यह सारी दुनिया कुछ नए ही रूप में दिख रही है। चारों तरफ बुढ़ापे एवं मृत्यु की ज्वालाएँ धधक रही हैं। मैं स्वयं को उस जलती आग से बाहर निकालना चाहता हूँ। शृंगारों से सजी सुन्दरी मेरे मन को आकर्षित नहीं कर पा रही है, मेरा मन शिवरमणी के आलिंगन को मचल रहा है। माँ अब तक तूने हमेशा मेरे शीश पर हाथ रखकर मुझे सफलता का आशीर्वाद दिया है। अब मैं संयम के महापथ पर कदम बढ़ाऊंगा, मुझे अनुमतिपूर्वक आशीर्वाद प्रदान करो।

बेटे तू हम पर बिना बादलों की बिजली क्यों गिरा रहा है। कल तक तो सब बातें अच्छी थी। मात्र सिर की पगड़ी गिर जाने से क्या हो गया।

माँ! सिर की पगड़ी गिर जाने से वह हो गया, जिसके बिना मेरा सारा जीवन व्यर्थ चला जाता। प्रकृति ने मुझे एक अमूल्य संकेत दे दिया है- जैसे झटके से पगड़ी गिर गई वैसे ही एक झटके से यह शरीर भी लुढ़क जायेगा। अतः विनाशवान पदार्थों के संचय एवं सुरक्षा

में ही अनमोल जीवन को व्यर्थ में न गँवा। अब मेरा संकल्प पक्का है कि मुझे सांसारिक बंधनों में नहीं उलझना है।

मुड़ गए चरण। बदल गई राहें। सारे पांडाल में मानो सन्नाटा छा गया। खुशियाँ गमगीनियों में बदल गई। लोग हत्प्रभ रह गये। 'कई बारातों में गये लेकिन ऐसा आश्चर्य तो कभी नहीं हुआ' 'ये तो मसाणिया वैराग्य है जरा देर में ही कपूर की भाँति उड़ जायेगा' 'न जाने किस मुहूर्त में बारात को खाना किया था' 'अरे, उदयचन्द्र तो इतना सीधा, सरल, विनीत और समझदार लड़का है, आज यह इतना जिद्दी कैसे हो गया, साफा बांधने वाले की अक्ल कहाँ कई, इतना ढीला बांधा' जितने मुँह उतनी बातें।

उदयचन्द्र घर लौट आया। समझाने का क्रम अभी भी थमा नहीं था। एक के बाद एक उसे मनाने की कोशिश में लगते रहे लेकिन सब व्यर्थ। संकल्प अडिग था। परिवार वालों ने भी दीक्षा की अनुमति नहीं दी। मन दृढ़ हो और धैर्य का साथ हो तो देर भले हो, अंधेर नहीं होती। सात वर्षों तक निरन्तर प्रयत्न करने पर अन्ततः पारिवारिकजनों ने दीक्षा की अनुमति प्रदान की। वि.सं. 1898 चैत्र शुक्ला एकादशी को मुमुक्षु उदयचन्द्र की दीक्षा, उनका परिवार जिस देशी सम्प्रदाय से जुड़ा था उसमें हुई।

दीक्षा के पश्चात् मुनि श्री उदयसागरजी म.सा. ज्ञान एवं चारित्र की निर्मल आराधना में संलग्न हुए। उनका हृदय शुद्ध-साध्वाचार का पालन करने हेतु अत्यन्त समुत्सुक मचल रहा था क्योंकि वे जानते थे कि संयम का उद्देश्य शुद्ध आत्मस्वरूप को अभिव्यक्त करना है जो कि अहिंसा आदि महाव्रतों की निर्मल आराधना से ही संभव है। उन्होंने जिस सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी, वहाँ आचार शुद्धि का वह स्तर नहीं था। मुनि बनना एक बात है एवं भावों में मुनित्व का हिलोरे लेना।

दूसरी बात है मुनि उदयसागरजी की सच्चे गुरु की खोज अन्ततः सफल हुई एवं साथी मुनि श्री राजमलजी म.सा. के साथ उन्होंने संवत् 1908 चैत्र शुक्ला एकादशी को पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. के चरणों में पुनः दीक्षा ग्रहण की। पूज्यश्री ने उन्हें हरकचंदजी म.सा. का शिष्य घोषित किया। पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. के स्वयं की नेश्राय में शिष्य बनाने का त्याग था।

पूज्यश्री के चरणों में पहुँचने के बाद मुनि श्री उदयसागरजी म.सा. की श्रुत एवं चारित्र की साधना निरन्तर निखार को प्राप्त होती गई। योग्य सन्निधि योग्य व्यक्ति के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण निमित्त बनती है। पूज्यश्री की अनुपम सन्निधि से मुनिश्री का विकास ठोस एवं द्रुत गति से हुआ। मुनिश्री की योग्यता को देखते हुए आचार्य श्री शिवलालजी म.सा. ने संवत् 1925 पौष शुक्ला सप्तमी को उन्हें युवाचार्य पद देकर श्रीसंघ की पूर्ण जिम्मेदारी सौंप दी। आचार्य श्री शिवलालजी म.सा. स्वर्गवास के पश्चात् श्री उदयसागरजी म.सा. ने आचार्य पद को सुशोभित किया।

मराठी में कहावत है- 'पानी जेव्हा रेला, गुरु जेव्हा चेला' आचार्यश्री स्वयं तो आत्मसाधना की गहराईयों में डूबकी लगा रहे थे साथ ही अपने शिष्यों में भी साधना के वे ही उत्तम बीच बो रहे थे।

एक बार आचार्यश्री बाहर से पधारे तो देखा कि एक मुनिराज के पास पात्र टूटा पड़ा है। आचार्यश्री ने मुनिराज को उपालम्भ दिया कि हम निर्ग्रंथ श्रमण हैं, हमारे प्रत्येक कार्य में यतना रहनी चाहिए। वस्तुओं को उठाने एवं रखने की यतना हमारी समिति है, अयतना से प्रवृत्ति होने से पात्रों का टूटना होता है। पात्र परिकर्म (रंगना, जोड़ना आदि) से मुनि के स्वाध्याय काल की कितनी हानि होती है.....। वे मुनिराज विनम्रतापूर्वक सिर झुकाकर 'तहत्ति भगवन्' इत्यादि सद्वचनों

से गुरुवाणी को धारण कर रहे थे। उपालम्भ की इस प्रक्रिया के दरम्यान ही एक अन्य मुनिराज पधारे व इस नजारे को देखने लगे कि आचार्यश्री कठोर उपालम्भ दे रहे हैं व वे मुनिराज सुन रहे हैं। उन्होंने आचार्यश्री को निवेदन किया-गुरुदेव क्षमा करें, यह पात्र उनके हाथ से नहीं, मेरे हाथ से टूटा है। ऐसा कहते ही आचार्यश्री ने उन मुनिराज को कहा- तुमने इतना भी नहीं कहा कि यह पात्र मेरे हाथ में नहीं टूटा है। वे मुनिराज कहने लगे-गुरुदेव, ऐसा कह देता तो मुझे आपके ये अमूल्य अमृत वचन श्रवण करने को कैसे मिलते।

इसे कहते हैं- विनम्रता, सहिष्णुता। आज के जमाने में जब लोग अपनी गलती होने पर भी सुनना नहीं चाहते, तब गलती न होने पर भी विनम्रतापूर्वक सहन करने की यह घटना एक विशिष्ट प्रेरणा प्रदान करती है।

एक बार एक अफसर आचार्यश्री के दर्शनार्थ पहुँचा व पर्युपासना करते हुए पूछने लगा- भगवन विनय का तात्पर्य क्या है? आचार्य-प्रवर ने उसके प्रश्न का उत्तर दिए बिना एक मुनिराज को आवाज दी। वे मुनिराज अपने काम को छोड़कर तुरन्त हाज़िर हुए व हाथ जोड़कर खड़े हुए। आचार्यश्री मुनिराज को आवाज देने के बाद पुनः अपने अध्ययन, लेखन आदि कार्य में तन्मय हो गये। वे मुनिराज कुछ देर हाथ जोड़ प्रतीक्षारत रहे व आचार्यश्री को अपने कार्य में लीन देखकर उनकी एकाग्रता को भंग करना उपयुक्त न समझकर धीरे से पुनः लौट गये। अभी अपने स्थान पर जाकर बैठे ही होंगे कि पुनः आचार्यश्री ने आवाज दी और उनके आने पर फिर वही बात। उनकी तरफ ध्यान दिये बिना आचार्यश्री अपने कार्य में लग गये। इस प्रकार एक, दो, तीन, चार, पाँच, दस, पंद्रह, बीस, इक्कीस बार उन्हें पुकारा। वें मुनिराज उसी विनम्र भाव से पुनः पुनः हाथ जोड़कर उपस्थित होते

रहे। यह दृश्य वह अफसर आश्चर्यचकित होकर देख रहा था। वह कहने लगा-गुरुदेव, मुझे विनय का अर्थ समझ में आ गया है। इक्कीस बार एक समान भाव से शिष्य की करबद्ध उपस्थित देखकर मैं दंग रह गया। विनय की इस उत्कृष्टता की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था, जो साक्षात् देख रहा हूँ। ऐसी थी आचार्यश्री के शिष्यों की विनयशीलता की मिशाल। ऐसे एक से बढ़कर एक अनेक मुनिराज आचार्यश्री के शासन की शोभा बढ़ा रहे थे।

जैन शास्त्रों में मुनि को 'चंदो इव सोमलेसा सूर्यो इव दित्ततेया' कहा है। आचार्यश्री आत्मगुणों से समृद्ध होने के कारण चंद्र के समान सौम्य लेश्या (चमक) वाले तो थे ही, ज्ञान की प्रखरता के कारण सूर्य के समान तेजस्वी भी थे। एक बार संवत् 1928 में जब आचार्यश्री पाली शहर में विराज रहे थे, एक मूर्तिपूजक आचार्य ने आपको शास्त्रार्थ की चुनौती दी। वाद-विवाद आचार्यश्री के स्वभाव में नहीं था लेकिन प्रसंग उपस्थित होने पर उन्होंने जिनशासन के शुद्ध सिद्धांतों की सुरक्षा के लिए शास्त्रार्थ किया। शर्त यह रखी गई थी कि जो हारेगा, उसे जीतने वाले की इच्छा के अनुसार एक शिष्य जीतने वाले पक्ष को देना होगा। आचार्यश्री के अकाट्य तर्कों के समक्ष मूर्तिपूजक आचार्य परास्त हुए एवं फलस्वरूप आचार्यश्री को मुनि किशनसागरजी म.सा. जैसे जैन विद्वान संत की प्राप्ति हुई।

आचार्यश्री ने कराची व रावलपिंडी (वर्तमान में पाकिस्तान में) पंजाब आदि में भी विचरण करके जिनशासन की प्रभावना की। पंजाब पधारने पर आपकी साधना एवं जीवन से श्री मायारामजी म.सा. अत्यंत प्रभावित हुए। जब श्री मायारामजी म.सा. राजस्थान पधारे तो आचार्यश्रीजी ने भी उनका खूब सत्कार किया एवं सांगानेर भीलवाड़ा के एक मुमुक्षु भाई छोटेलालजी को उन्हें भेंट किया। श्री छोटेलालजी म.सा. का शिष्य परिवार सुविस्तृत हुआ एवं उस परम्परा में आज भी शास्त्री श्री

पद्मचन्द्रजी म.सा. विराजमान है, जिनका इस समुदाय के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध है।

वि. सं. 1954 आश्विन पूर्णिमा को आचार्यश्री ने सम्प्रदाय की भावी सुव्यवस्था के लिए श्री चौथमलजी म.सा. को युवाचार्य पदवी प्रदान की एवं संलेखनापूर्वक संवत् 1954 माघ शुक्ला दशमी को स्वर्गवासी हो गये।

## कठोर आचारनिष्ठ आचार्य प्रवर १००८ श्री चौथमल जी म.सा.

विक्रम संवत् 1885 वैशाख शुक्ला चतुर्थी को पाली के सुश्रावक पोखरदासजी धोका की धर्मपत्नी हीराबाई की कुक्षि से आचार्य श्री चौथमलजी म.सा. का जन्म हुआ। अचानक माता-पिता का देहांत हो गया। चौथमलजी में संयम ग्रहण करने की भावना जागृत हो गई। वे योग्य गुरु की खोज में चल पड़े। अण्डा जब माता का वात्सल्य भाव युक्त सेक प्राप्त करता है तो निरन्तर विकसित होते हुए एक दिन स्वयं पक्षी रूप में निखर उठता है। उसी अंडे को अव्यवस्थित तरीके से रखा जाये तो वह नष्ट होकर निर्जिव एवं निस्सार हो जाता है। वैसे ही शिष्य को योग्य गुरु मिलने पर वह निरन्तर विकसित होता है और योग्य गुरु का सानिध्य न मिलने पर वह अविकसित रह जाता है एवं साधना के शिखरों को स्पर्श नहीं कर पाता। अतः शास्त्र में 'सहायमिच्छेणिउणत्थबुद्धि' कहकर तत्त्वज्ञ गुरु का चरणाश्रय प्राप्त करने का उपदेश दिया। पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म. सा. का दर्शन होने पर उनकी मनोवांछा सफल हुई एवं पूज्यश्री के चरणों में वि. सं. 1909 चैत्र शुक्ल 12 को ब्यावर में उनकी दीक्षा हुई।

मुनि श्री चौथमलजी म.सा. आचार-विचार में स्वयं भी दृढ़ थे एवं अन्य मुनियों को भी शुद्धाचार हेतु संप्रेरित करते रहते थे। जनता में भी आपका निर्मल यश प्रसृत था। ज्ञान एवं क्रिया के योग्य संगम को देखकर आचार्य पूज्य श्री उदयसागरजी म.सा. ने संवत् 1954 आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को श्री चौथमल जी म.सा. को संघ के भावी उत्तराधिकारी के रूप में मनोनीत कर दिया। संघ में हर्ष व्याप्त हो गया। आचार्य श्री उदयसागरजी म.सा. शारीरिक अस्वस्थता के कारण 15

वर्षों से रतलाम विराज रहे थे एवं श्री चौथमलजी म.सा. भी वृद्धावस्था के कारण जावद विराज रहे थे। चातुर्मास काल के पश्चात् आचार्य श्री उदयसागरजी म.सा. ने श्रीलालजी म.सा. आदि दो मुनियों के साथ युवाचार्य पद की प्रतीक रूप चादर जावद भेज दी एवं जावद में युवाचार्य पद महोत्सव मनाया गया। तदनंतर युवाचार्य श्री चौथमलजी म.सा. की शारीरिक कमजोरी होने पर भी विहार करके रतलाम पधारे एवं आचार्यश्री के सानिध्य में साधु समाचारी का पुनः निर्धारण किया एवं मौजूद संतों के हस्ताक्षर उस पर हुए। आचार्यश्री का कुछ ही समय में महाप्रयाण हो गया। श्री चौथमलजी म.सा. पर आचार्य पद की सम्पूर्ण जिम्मेदारी आ गई।

आचार्यश्री स्वयं वृद्धावस्था में थे। डेढ़ सौ से अधिक संतो की सुव्यवस्था का प्रश्न सम्मुख था। आचार्यश्री ने सभी मुनियों को पाँच गणों में रखकर पाँच गणावच्छेदक (गणव्यवस्थापक) नियुक्त कर दिये। इसी प्रकार रंगूजी म.सा. के साध्वियों के भी पाँच गण एवं पाँच गणावच्छेदिकाएँ बना दिये गये।

आचार्यश्री चौथमलजी म.सा. उस नीति वाक्य को जानते थे कि 'यद्यदाचरित श्रेष्ठःलोकस्तदनुवर्तते' जैसा-जैसा श्रेष्ठ पुरुष करते हैं, लोग उसी का अनुवर्तन करते हैं। बड़ों के आचरण को देखकर छोटे भी वैसा ही करने लगते हैं। कभी सन्तों में प्रतिक्रमण की क्रियाओं में प्रमाद देखते तो आचार्यश्री शारीरिक वेदना होने पर भी लकड़ी को हाथ में लेकर उसके सहारे स्वयं खड़े होकर प्रतिक्रमण करते। इसे देखकर लज्जावश एवं प्रेरित होकर मुनिराज भी प्रमाद त्यागकर प्रतिक्रमण की क्रियाओं की विधिवत् आराधना करने लगते। यह हमारी मानसिक कमजोरी है कि हम अपने आलस्य एवं प्रमाद को ढकने के लिए किसी अन्य व्यक्ति के आचरण को अपना छत्र बना लेते हैं कि वे भी ऐसा करते हैं इसलिए हम भी करें तो क्या हो गया। ऐसा

कहकर अपने बचाव का मार्ग ढूँढने वाले व्यक्ति अपने जीवन को निर्दोष नहीं बना पाते। वृद्ध एवं अशक्त मुनि बैठे-बैठे प्रतिक्रमण करे तो उनकी आड़ लेकर युवा एवं सशक्त मुनि भी बैठे-बैठे प्रतिक्रमण करे यह कदापि योग्य नहीं है। आचार्यश्री ने स्वयं कठिनाई झेलकर भी मुनियों को शुद्धाचार की प्रेरणा दी है।

आचार्यश्री की औदारिक देह शनैः शनैः निर्बल होती जा रही थी। फिर आचार्यश्री अपने नित्य नियम आदि के प्रति जागृत थे। एक बार आपश्री जैसे ही नित्यनियम करके लेटने लगे तो अचानक बेहोश हो गये। सेवा में तत्पर मुनियों ने श्री अमरचंदजी पितलिया, बालचंदजी श्रीश्रीमाल आदि प्रमुख श्रावकों को संकेत दिया। उन्होंने नाड़ी देखकर थोड़ा हिलाया तो आचार्यश्री होश में आ गये एवं आत्मशुद्धि हेतु आलोचना करते हुए सबसे क्षमायाचना करने लगे। श्रावकों ने निवेदन किया-हुजूर! आप तो अपना कार्य सिद्ध कर रहे हैं। संघ का आधार कौन होगा? आचार्यश्री के अन्तर्मन में भी यह विचार चल ही रहा था। श्रावकों का निवेदन सुनकर आप विशेषतः सजग हो गये एवं कुछ क्षणों के लिए गहरी सोच में डूबकर अपने मन में पहले ही किये जा चुके निर्णय को और मजबूती देकर कहा-मेरे बाद श्रीलालजी म.सा. शासन की बागडोर संभालेंगे। कुछ स्वस्थ होते ही आचार्यश्री ने संवत् 1957 कार्तिक शुक्ला एकम् को प्रवचन सभा में पधारकर अपने हाथों से मुनि श्री श्रीलालजी म.सा. को युवाचार्य पद प्रदान करते हुए पछेवड़ी ओढ़ाई। अनेक आगमों के जानकार सुश्रावक श्री अमरचंद जी पितलिया ने आचार्यश्री का निर्देश लिखित रूप में पढ़कर सुनाया। संघ जय-जयकार करने लगा। कुछ ही दिनों पश्चात् कार्तिक शुक्ला नवमी-दशमी को आचार्य श्री चौथमलजी म.सा. का संलेखनापूर्वक महाप्रयाण हो गया। मात्र तीन वर्षों तक ही आपने आचार्य पद को सुशोभित किया।

## ब्रह्मतेजस्वी आचार्य प्रवर १००८ श्री श्रीलाल जी म.सा.

प्राकृतिक सौन्दर्य से शोभायमान सुरम्य राजस्थान का टोंक शहर। श्रेष्ठीवर्य श्रीमान् चुन्नीलालजी बम्ब की धर्मपरायण धर्मपत्नी चाँदकंवरबाई की रत्नकुक्षि से संवत् 1926 आषाढ़ शुक्ला द्वादशी को एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ जिसका नाम रखा गया श्रीलाल। कुछ वर्तमान कुछ अतीतों का आभास दे जाते हैं। बालक श्रीलाल को देखकर उसके पूर्वजन्म की साधनाशीलता की कल्पना सहज ही मन में तैर जाती। छः वर्ष की छोटी-सी वय में श्रीलाल को प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल इत्यादि कंठस्थ हो गये। वह अन्य बालकों के समान खेलकूद में ज्यादा रुचि नहीं रखता था। शैशव चंचलता का पर्याय माना जाता है लेकिन बालक श्रीलाल का बाल्यकाल इसका अपवाद था।

एकांत जीवन का केन्द्रक है। विश्व के सभी महान् कार्यों की मानस संरचना एकान्त के क्षणों में ही हुई है। एकान्त का लेन्स जीवन सूर्य की समग्र शक्ति रश्मियों को घनीभूत एकाग्र और केन्द्रित करके एक अपूर्ण ज्योति को प्रकट कर डालता है। मानसिक भावधाराओं के जो प्रवाह अन्यान्य व्यक्तियों की समीपता रूपी चट्टनों से अवरुद्ध बने रहते हैं, एकान्त का विस्फोट उन अवरोधों से मुक्त करके भावधाराओं को अजस्र प्रवाहित कर देता है। जीवन में निखार और चमक पैदा करने वाला तत्त्व एकांत ही है। आगम में भी मोक्ष सुख को प्राप्त करने के लिए बताए गये उपायों में 'एगंतनिसेवणो' एकान्त के निसेवन को भी अमूल्य उपाय बताया है। एकान्त जीवन में अनेक नवीन सर्जनों का सृष्टिकर्ता है।

श्रीलालजी जीवन के उस अति प्रारम्भ से ही एकांतप्रेमी थे। शैशव में भी उन्हें खेलकूद में ज्यादा रुचि नहीं थी। फुर्सत मिलते ही

वे शहर के किनारों अपनी प्रिय टेकरी (छोटी पहाड़ी) पर बैठे जाते और घंटों चिंतन-मनन करते। बचपन की मासूमियत एवं कोमलता से भरपूर उस बालक के चेहरे पर गंभीर दार्शनिकता से भरे नयनों में एक निराला ही आभास था। उस टेकरी पर बैठा श्रीलाल योगसाधना में लीन किसी योगी से कम नहीं लगता था। जिसे अपने भीतर की पुस्तक खोलने की रीति नहीं आती, वे ही व्यक्ति बाहर की पुस्तकों एवं साधनों में समाधान ढूँढने की मशक्कत करते पाये जाते हैं। श्रीलालजी अपने स्वयं के भीतर ही जीवन की ज्वलंत समस्याओं के समाधान ढूँढते रहते। संसार के रहस्यों का अनुसंधान श्रीलालजी के मन की प्रयोगशाला में चलता रहता।

दस वर्ष की छोटी वय में श्रीलालजी का विवाह दूनी गाँव की 8 वर्ष की वय वाली मानकंवरबाई के साथ हो गया। लघुवय होने के कारण विवाह के पश्चात् मानकंवर बाई पीहर में ही थी। इधर श्रीलालजी टोंक में पधारने वाले मुनिराजों के प्रवचन सुनते, उनके चरणों में ज्ञानार्जन करते रहते। एक बार श्रीलालजी ने ब्रह्मचर्य के विषय पर मार्मिक प्रवचन सुना। मन में पक्का संकल्प कर लिया कि आजीवन दृढ़ ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। साधारण व्यक्ति आज निश्चय करते हैं, कल बदल जाते हैं लेकिन विशिष्ट व्यक्ति एक बार जो निर्णय कर लेते हैं, उस पर अडिग बने रहते हैं। श्रीलालजी असाधारण व्यक्ति थे। एक बार प्रवचन स्थल पर उनके समीप बैठे हुए श्री चुन्नीलालजी डागा ने भी श्रीलालजी के लक्षणों को देखकर हीरालालजी बम्ब को कहा था कि श्रीलालजी कोई साधारण पुरुष नहीं है। तुम्हारा यह भतीजा आगे चलकर महान् पुरुष होगा। यह व्यक्ति तुम्हारे घर में रहना मुश्किल है।

बचपन से ही श्रीलालजी कहा करते थे-‘मैं साधु बनूँगा’। अब जीवन की क्रियाओं में वे भाव दिखने लगे। श्रीलालजी अधिकाधिक

समय धर्म-ध्यान में बिताते। माता एवं भाई ने विचार किया श्रीलालजी के भाव संयम की दिशा में ज्यादा आगे न बढ़े, इस हेतु मानकंवरबाई का गौना करके उन्हें यहाँ ले आना ठीक रहेगा। मानकंवरबाई को भी दुनी से लाया गया। फिर भी श्रीलालजी की जीवन प्रक्रिया प्रभावित नहीं हुई। उनके लिए मानकंवरबाई पत्नी नहीं बहन ही थी क्योंकि ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा उनके रोम-रोम में समाई हुई थी।

कुछ समय निकल जाने पर श्रीलालजी में कोई परिवर्तन न देखकर उनकी माता ने मानकंवरबाई को प्रेरित किया कि तू तो श्रीलाल की अर्द्धांगिनी है। तू तो श्रीलाल के साथ चाहे सो कर सकती है। अभी से तूने श्रीलाल को संसार की ओर नहीं मोड़ा तो .....

श्रीलालजी अपने कक्ष में जम्बू चरित्र पढ़ने में लीन थे। मानकंवरबाई श्रृंगारों से सजकर समीप खड़ी होकर नम्र एवं भावयुक्त वचनों से अपनी ओर देखने की प्रार्थना करने लगी। श्रीलालजी का हृदय उसके कोमल, मधुर, आकर्षक आलाप को सुनकर लेशमात्र भी स्पन्दित नहीं हुआ। मेघ की ध्वनि सुनकर मयूर ही नाचते हैं, शेर नहीं। कामिनियों के प्रेमालाप कामी व्यक्तियों के हृदय को ही वेध सकते हैं, ब्रह्मतेज से तेजस्वी महापुरुषों के चित्त को नहीं, तथापि एकान्त में स्त्री के साथ रहना अनुपयुक्त है- ऐसा श्रीलालजी अपने अनुभव से ज्ञान से भली-भाँति जानते थे। शास्त्र में कहा है-

**कामं तु देवीहिं वि भूसियाहिं, न चाइया खोभइउं तिगुत्ता।  
तहा वि एगंतहियं ति नच्चा, विवित्त वासो मुणिणं पसत्थो॥**

-श्री उत्तराध्ययन सूत्र अ. 32

तीन गुप्तियों से युक्त मुनि को भले ही विभूषित देवियाँ भी विचलित न कर सके, तथापि मुनि को एकान्त हितकारी जानकर स्त्रियों से रहित स्थान में ही रहना चाहिए।



एकांत में स्त्री के साथ उपस्थिति रहना अनुपयुक्त समझकर श्रीलालजी जब द्वार से बाहर निकलने लगे तो मानकंवरबाई ने रास्ता रोक लिया। अन्य मार्ग न देखकर श्रीलालजी उस तीसरी मंजिल से पास की दो मंजिली हवेली पर कूद गये। जोर की आवाज होते ही माताजी आये व कहने लगे कि श्रीलाल, अब तू बच्चा थोड़ी ही है। देख कितनी चोट आ गई। श्रीलालजी को चोट की जितनी पीड़ा थी, उससे कहीं ज्यादा अपने ब्रह्मचर्य से सुदृढ़ बनाए रखने पर संतुष्टि का अहसास था।

समय निकलता जा रहा था। श्रीलालजी अपने संकल्प एवं धार्मिक क्रियाओं में दृढ़ थे। बहुत बार विभिन्न तरीकों से माता, भाई आदि पारिवारिकजनों को दीक्षा की अनुमति देने हेतु कहा, समझाया लेकिन गर्म तवे पर गिराई जाने वाली बूंदों के समान सारे निवेदन और प्रयत्न व्यर्थ हो गये। अन्ततः अन्य उपाय न देखकर एक दिन श्रीलालजी ने अपने मित्र गूजरमलजी पोरवाल के साथ टोंक से निकलकर साधु वेश पहन लिया एवं विहार कर दिया। श्रीलालजी के भाई नाथूलालजी व गूजरमलजी के पारिवारिकजन खोजने निकले तो देखा कि वे सुनहेल (इन्दौर स्टेट) में 100-150 श्रोताओं को उपदेश सुना रहे थे। नाथूलालजी आदि टोंक से ही इनके नाम का वारंट निकलवा कर लाये थे। प्रवचन के पश्चात् श्रीलालजी को टोंक चलने को कहा किन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि गुरुजनों के पास दीक्षा की अनुमति मिलने तक टोंक आने के भाव नहीं है। वहाँ के सूबा साहिब को नाथूलालजी ने वारंट बताया तो उन्होंने श्रीलालजी एवं उनके मित्र दोनों को अपने कचहरी में बुलाया एवं कहा कि चुपचाप इनके साथ टोंक जाओ वरना गिरफ्तार करके पहुँचा दिया जायेगा। श्रीलालजी एक पाँव पर खड़े होकर सूबा साहिब से कहने लगे- टोंक तो दूर, मुझे यहाँ से हटाना मुश्किल है। तीन घंटे तक श्रीलालजी एक पाँव पर खड़े रहे।

सूबा साहिब घबराए और नाथूलालजी को कहा कि हमें इस फंद से अलग रखो। साधु बनना कोई अपराध नहीं है। तुम्हें जो योग्य लगे सो करो। आखिरकार दीक्षा की अनुमति देनी पड़ी एवं संवत् 1945 माघ कृष्ण सप्तमी को पूज्य अनूपचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के पूज्य श्री किशनलालजी म.सा. ने वणेटा ग्राम में दीक्षा दे दी एवं बलदेव जी म. सा. के शिष्य बने।

श्रीलालजी म.सा. की इच्छा पहले से ही पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. की सम्प्रदाय के श्री चौथमलजी म.सा. के पास दीक्षा लेने की थी। पर घर वाले नहीं माने। चातुर्मास में श्री किशनलालजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद श्रीलालजी म.सा. ने विहार करके यथासमय मेवाड़ के डूंगला गाँव में संवत् 1947 मार्गशीर्ष शुक्ला एकम्/दूज को पूज्य श्री चौथमलजी म.सा. की शिष्यता स्वीकार की।

श्रीलालजी म.सा. ने निरन्तर विनयपूर्वक ज्ञानाराधना करते हुए विपुलज्ञान का अर्जन किया। आपके जीवन के अनन्य गुणों को देखते हुए आचार्यश्री चौथमलजी म.सा. ने 31 वर्ष की अल्पवय में होने पर भी श्रीलालजी म.सा. को संघ का उत्तराधिकार सौंप दिया। उस समय कई मुनिराज उनसे वय में, दीक्षा में बड़े थे फिर 'गुणाः पूजा स्थान गुणिषु न च लिंग न च वयः' के नियमानुसार श्रीलालजी म.सा. के दिव्य गुणों ने उन्हें समग्र संघ के शिखर पर स्थापित कर दिया।

आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. महान् आध्यात्मयोगी थे। विशुद्ध संयम की मशाल आगे रखकर उसी के प्रकाश में चलने और चलाने वाले पूज्यश्री की वाणी में भी अद्भुत तेज था। जहाँ-जहाँ उनका पधारना होता, धर्मध्यान का ठाठ लग जाता है। बीकानेर चातुर्मास में बख्तावर नामक एक वैश्या ने उपदेशों से प्रभावित होकर वैश्यावृत्ति का त्याग कर दिया एवं श्राविका वृत्ति को धारण कर लिया। उदयपुर

चातुर्मास में सामायिक की पच्चीस रंगी हुई अर्थात् 25 व्यक्ति एक साथ 25 सामायिक करने वाले, 25 व्यक्ति एक साथ 24 सामायिक करने वाले तथा इसी प्रकार क्रमशः 25-25 व्यक्ति 23, 22, 21, 20. .... सामायिक करने वाले 625 जनों द्वारा होने वाले इस कार्य के अवसर पर किसी-किसी ने निरन्तर 151, 131 सामायिक भी की। रतलाम चातुर्मास में आचार्यश्री आदि ठाणा 46 सहित विराजमान थे। वहाँ संवत्सरी को 1901 पौषध हुए एवं संवत्सरी तक 10686 पौषध हो गये।

आचार्यश्री कुचेरा में विराजमान थे। अजमेर में कॉफ्रेंस का सम्मेलन था। वहाँ पधारने हेतु राय सेठ श्री चाँदमलजी साहिब का बहुत आग्रह था। पूज्यश्री की इच्छा कम थी फिर भी कुछ साधुओं की इच्छा और श्रावकों के आग्रह को देखकर उन्होंने साधुओं से कहा कि जब तक अधिवेशन होता हो तब तक तुम स्थानकवासी घरों से गोचरी न लाओ तो ही मैं अजमेर जाने का सोच सकता हूँ, संत तैयार हो गये। अजमेर में अनेक साधु-साध्वी पधारने वाले थे, मुनियों को तकलीफ न पड़े इस उद्देश्य से श्रावक वर्ग साधुओं के लिये अधिक आहार बनाकर दोष लगा सकता है- इस बात को समझते हुए आचार्यश्री ने स्थानकवासी घरों से गोचरी न लाने हेतु कहा था। आचार्यश्री ने स्वयं ने अजमेर पधारकर एक तेला किया व पारणा करके फिर एक तेला किया। मुनियों ने भी तपस्या की व अन्य मतियों के यहाँ से भिक्षा लाये। संयम की शुद्धता के प्रति यह जागरूकता आज के जमाने के साधु-साध्वियों के लिए बहुत बड़ी प्रेरणा है। छोटे-छोटे गाँव में अधिक संख्या में साधु-साध्वियों का एकत्र हो जाना अशुद्ध भिक्षा को चलाकर आमंत्रण है। शास्त्र में संयम में दोष लगने के अनेक कारणों में संकीर्ण अर्थात् अनेक भिक्षाचरों का एक जगह रहना भी दोष लगने का कारण माना गया है।

आचार्यश्री जीवदया व जीवरक्षा के लिये प्रबल प्रेरणाएँ देते थे। आचार्यश्री के उपदेशों से अनेक राजा-महाराजाओं, राव नरेशों ने अपने-अपने राज्यों में शिकार नहीं करने के आदेश दिये। अनेक स्थानों पर बलि हमेशा के लिए बंद कर दी गई, मछलियों को मारना बंद कर दिया गया, समय-समय पर अगते (जीवहिंसा का निषेध दिवस) घोषित किये गये।

ब्यावर चातुर्मास संवत् 1967 में भिनाय के पंडित बिहारीलाल शर्मा ने पूज्यश्री को संस्कृत पढ़ाना स्वीकार किया। चार माह में आचार्यश्री ने सारस्वत व्याकरण की तीनों वृत्तियाँ पढ़ ली। पंडितजी कहते थे- पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा. के जितनी स्मरण शक्ति और बुद्धि मैंने आज तक नहीं देखी। अपने नित्य नियम, स्वाध्याय, प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण एवं आचार्य पद के अनेक दायित्वों का निर्वहन करते हुए उन्हें थोड़ा-सा समय प्राप्त होता था, उसमें भी उन्होंने तीनों वृत्तियाँ सीख ली, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

आचार्यश्री के वैराग्यमय जीवन व उपदेश का ऐसा प्रभाव था कि अनेक भव्यात्माओं ने आचार्यश्री के चरणों में संयम स्वीकार किया। आचार्यश्री जी के रोम-रोम से वैराग्य टपकता था। उनके वचन, व्यवहार सब में वैराग्य का अद्भुत पुट था। उसी का प्रभाव था कि आपके 20 वर्षों के आचार्यकाल में 157 मुनियों की दीक्षाएँ हुई, साध्वियों की संख्या तो और भी ज्यादा है। ब्यावर चातुर्मास में तो एक साथ पाँच पुरुषों की दीक्षा का प्रसंग भी बना।

आचार्यश्री ने गुजरात, सौराष्ट्र में भी विचरण किया। मोरवी चातुर्मास हेतु पधारते ही पूज्यश्री ने पच्चीस लाख गाथाओं का स्वाध्याय करने का प्रण किया। आचार्यश्री को अनेक शास्त्र- आचारांग, सूत्रकृतांग, सुखविपाक, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नंदी, व्यवहार, निशीथ, बृहत्कल्प,

दशाश्रुतस्कन्ध कंठस्थ थे तथा करीब 150 थोकड़े (आगमों के आधार पर हिन्दी या देशी भाषा में बने प्रकरण) याद थे। स्वाध्याय करते हुए जब वे उसमें लवलीन हो जाते तो वह दृश्य देखते ही बनता था। स्वाध्याय संयम को शुद्ध बनाने एवं विकसित करने का अनमोल मंत्र है। आज समूचे जैन समाज में आचार-विचार की जो शिथिलता देखने को मिल रही है, उसका बहुत बड़ा कारण आगमों के स्वाध्याय की उपेक्षा है। प्रवचन को सजाने के लिए इधर-उधर की पुस्तकें पढ़ने के शौक में लगा मुनि समाज आगमों के अध्ययन की उपेक्षा करके जो महान् अनर्थ कर रहा है, उसका दुष्परिणाम बड़ा भयंकर है। आगमों का स्वाध्याय साधक के वैराग्य एवं संयम को ऊँचा उठाता है। भीतर के वैराग्य बिना ऊपर से की गई शाब्दिक सजावट से वह प्रेरणा कभी उद्भूत नहीं हो सकती, जो अन्तर के निर्मल वैराग्य से सहज प्रकट हो जाती है।

आचार्यश्री ने सौ से अधिक साधुओं के हो जाने से सुव्यवस्था हेतु पाँच गण बनाकर प्रत्येक गण में अग्रेसर नियुक्त कर दिया था, एक गण के अग्रणी वे स्वयं थे। स्वास्थ्य की विशेष प्रतिकूलता होने पर आचार्यश्री ने उदयपुर में संवत् 1975 कार्तिक शुक्ला द्वितीय को मुनि श्री जवाहरलालजी म.सा. को युवाचार्य पद पर नियुक्त करने की घोषणा कर दी। मुनिश्री उस समय महाराष्ट्र में विचरण कर रहे थे। आचार्यश्री उदयपुर से रतलाम पधारे तथा मुनि श्री जवाहरलालजी म. सा. भी महाराष्ट्र से रतलाम पधारे। भावी आचार्य का स्वागत करने हेतु स्वयं पूज्यश्री श्रीलाल जी म.सा. कुछ दूर अगवानी हेतु पधारे। दोनों महापुरुषों में परस्पर काफी विचार-विमर्श हुआ। चैत्र कृष्णा नवमी दिनांक 26.3.1919 को हजारों की जनता के बीच आचार्य श्रीलालजी म.सा. ने नन्दीसूत्र की स्वाध्याय फरमाकर युवाचार्यश्री हेतु कुछ अत्युपयोगी निर्देश फरमाकर स्वयं पर धारण की हुई चादर को सभी

मुनिराजों के हाथ लगवाकर युवाचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. को ओढ़ाई। चादर धारण कर युवाचार्य-प्रवर ने आचार्यश्री एवं श्री मोतीलालजी म.सा. को विधिवत् वंदना की एवं सभी मुनियों ने युवाचार्यश्री को वंदना की। फिर उपस्थित करीब 70-80 महासतियों ने एवं फिर श्रावक-श्राविकाओं ने वंदना की।

आचार्यश्री संघ के भविष्य से सुरक्षित कर देने से स्वयं निश्चिन्तता का अनुभव कर रहे थे। विहार करते हुए आप जैतारण पधारे। आषाढ़ अमावस्य के दिन आचार्यश्री प्रातः प्रवचन फरमा रहे थे। विषय था-श्री भगवतीसूत्र में वर्णित गांगेय अनगार के भंग। आधा घंटा व्याख्यान देने के उपरान्त चक्कर आने लगे एवं आँखों में तकलीफ हो गई। पाटी रखकर दोनों हाथों से कुछ देर आँखें ढककर फिर ऐनक लगाकर सूत्र पढ़ने का प्रयत्न किया, पर नहीं देख सके। फिर चक्कर आया तथा सिर में तेज दर्द होने लगा। आचार्यश्री ने फरमाया कि आँखें काम नहीं कर रही हैं। अतः मुँह से ही व्याख्यान देता हूँ। मौखिक रूप से सूत्र उच्चारण करके अर्थ फरमाना प्रारम्भ किया। इतने में फिर चक्कर आये एवं दर्द का जोर बढ़ गया। तब मुनि गम्बूलालजी को व्याख्यान देने का कहकर आचार्यश्री अंदर पधार गये एवं मुनि श्री मनोहरलालजी म.सा. आदि के समक्ष कहा कि मैंने ज्ञानियों से सुन रखा है बैठे-बैठे अचानक दृष्टि चली जाये तो समझना चाहिए कि मृत्यु समीप है। ऐसा कहकर चतुरसिंहजी महाराज को ब्यावर की तरफ विहार करवाया कि ब्यावर विराजित हरकचंदजी म.सा. को बुला लेवें ताकि उनके समक्ष आलोचना कर लूँ। श्री हरकचंदजी म.सा. आषाढ़ सुदी 2 को सुबह पधारे। आचार्यश्री ने संलेखना संधारा पच्चक्खाने को कहा किन्तु मूलचंद जी महाराज ने कहा कि अभी वैसी स्थिति नहीं लगती, अतः नहीं पच्चखाया। सिर में वेदना तीव्र थी। आचार्यश्री मुनियों को पास में बुलाकर सबके सिर पर हाथ रखकर कहने

लगे-मुनिराजों! संयम से रहना, संप (प्रेम) के साथ रहना, पंडित श्री जवाहरलालजी की आज्ञा में विचरना। वे दृढधर्मी, चुस्त संयमी और मुझसे भी अधिक सार-संभाल करने वाले हैं। ये और मैं एक समान हैं, ऐसा समझना एवं उनकी सेवा करना। श्री हुक्मीचंद जी महाराज की सम्प्रदाय की ज्योति को प्रज्वलित रखना, शासन की शोभा बढ़ाना। मैं आप सबको खमाता हूँ। क्षमा करना-इतना कहकर पूज्यश्री की वाणी बंद हो गई। आचार्यश्री की वात्सल्य भरी अंतिम सीख पाकर समीप उपस्थित मुनियों की आँखों में श्रद्धाअक्षु भर आए। आषाढ सुदी दूज के दिन आचार्यश्री की बीमारी बढ़ गई। वे नित्य नियम भी ना कर सके। पूज्यश्री फरमाते थे कि जिस दिन मुझसे नित्य नियम न हो उस दिन समझना कि मेरा अंत समय समीप है। आचार्यश्री को सागारी संधारा करा दिया गया और रात के पिछले प्रहर में करीब 5 बजे 51 वर्ष की अल्पवय में ही आत्मा देह से विलग हो गई।

आचार्य पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा. का जीवन महान् त्यागमय, तपोमय, ज्ञान ज्योतिर्मय एवं साधनानिष्ठ जीवन था। प्रायः हर चातुर्मास में वे संवत्सरी तक एकान्तर तप करते थे। आचार्य पद प्राप्त करने के बाद 6 साल तक तो वे प्रतिमास एक तैला करते थे। बेले से लेकर आठ तक की अनेक तपस्याएँ की। तेरह की तपस्या भी आपश्री ने एक बार की थी। निद्रा बहुत अल्प लेना, 2-3 बजे जागृत होकर कंठस्थ किये हुए शास्त्रों का स्वाध्याय करते। थोकड़े फेरते, 24 तीर्थकरों का लेखा, ज्ञानलब्धि इत्यादि कई थोकड़े रोज फेरते थे। सुखे समाधि उन्हें वैयावृत्य करवाने का त्याग था। 45 वर्ष की वय तक रोज कम से कम एक नया बोल सीखने का उनके संकल्प था। अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों का उन्होंने त्याग कर रखा था। इस प्रकार पूज्यश्री इस पंचम आरे में भी तेजोदीप्त साधना पुरुष थे।

## युगदृष्टा आचार्य प्रवर १००८ श्री जवाहरलाल जी म.सा.

झाबुआ प्रांत के थांदला में कवाड़ गोत्र भूषण जीवराज जी की धर्मपत्नी नाथीबाई के कुक्षी से संवत् 1932 कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नामकरण हुआ-जवाहरलाल। माता-पिता अत्यंत वत्सल भाव से अपनी पहली सन्तान का देह एवं गुणों से अभिवृद्धि करने लगे।

विध्वंस और निर्माण कोई दो छोर नहीं है। ये प्रत्येक वस्तु में प्रतिक्षण घटित हाने वाली समकालिक घटनाएं हैं। रेल की दो पटरियों के समानान्तर पटरियों की तरह वे सदा साथ-साथ चलते हैं। एक-दूसरे से भिन्न होकर भी वे सदा साथ हैं। विध्वंस और निर्माण के एक साथ रहने का तथ्य जैन दर्शन की अतिमौलिक मान्यता है। इतना ही नहीं, उत्पत्ति एवं विनाश के प्रतिसमय प्रत्येक पदार्थ में हाने वाले संगम में इसी पदार्थ की स्थिरता भी सतत् जुड़ी रहती है। हर पदार्थ में हर समय पाया जाने वाला यह त्रिवेणी संगम तीर्थकरों के दिव्य ज्ञान के अतिरिक्त कौन व्याख्यायित कर सकता है। इसी संगम का त्रिपदी सूत्र 'उप्पेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' सुनकर गणधरों को 14 पूर्वों का समग्र विज्ञान प्रकट हो जाता है। ऊपर की आँख जहाँ विध्वंस को ही देख पाती है, भीतर की आँख उसमें छिपी निर्माण शक्ति को व्यक्त कर देती है।

बालक जवाहर का जीवन या फिर यूँ कहें कि आचार्य श्री जवाहर का सम्पूर्ण जीवन विध्वंस एवं निर्माण के युग का प्रतीक जीवन है। 2 वर्ष की वय में माँ का अवसान, 5 वर्ष की वय में पिता की मृत्यु एवं तेरह वर्ष के होते-होते माता-पिता के अभाव में संरक्षक एवं अभिभावक बनने वाले मामाजी का भी निधन विध्वंस की

लोमहर्षक कहानी कह रहा था। उसी विध्वंसकीर्ण मिट्टी में घुला-मिला था एक अद्भुत व्यक्तित्व के निर्माण का स्वर्ण। हमेशा से ही सोना मिट्टी के साथ मिलकर ही निकलता आया है। कभी नहीं सुना गया कि भू-गर्भ में मिट्टी से रहित निखालिस शुद्ध स्वर्ण रहा है। हमेशा से ही निर्माण विध्वंस के साथ-साथ चलता रहा है। आश्रय टूटने का हर झटका जवाहर के भीतर एक अमूल्य अनुभव एवं शक्ति का निर्माण करता जा रहा था। मामाजी की मृत्यु हो जाने पर तो वैराग्य अपनी उच्च सीमा का स्पर्श करने लगा। संयम स्वीकार करने का संकल्प घनीभूत हो गया। बाहर के द्वन्द्वों से व्यक्ति जितना आहत नहीं होता उतना भीतर के द्वन्द्व उसकी गति को अवरुद्ध कर देते हैं। जिन मामाजी ने मेरे माता-पिता का देहांत हो जाने पर मुझे पढ़ाया, लिखाया, व्यापार करना सिखाया, उनका पुत्र 5 वर्ष का है, मैं उसे छोड़कर दीक्षा कैसे ले लूं। घर, दुकान में भी मन नहीं लगता। असार संसार एक क्षण के लिए भी चित्त का आकर्षक नहीं लगता'-ऐसे कितने ही विचार मेघ मनोगमन में इतस्ततः दौड़ते रहते।

समस्या किसी परिस्थिति या व्यक्ति से परिभाजित नहीं होती, न ही समाधान किन्हीं बाकू अव्यवस्थाओं की अपेक्षा रखता है। विश्व की समग्र समस्याएँ, 'अनिर्णय' इस एक शब्द में सिमट जाती है और सभी समाधान 'निर्णय' इस एक शब्द में उपस्थित है। अनिर्णय ही समस्या है और निर्णय ही समाधान। अनिर्णय के दीर्घकालिक अरणि-संघर्ष के बाद आखिर जवाहर के भीतर निर्णय की ज्योति जगमगा उठी। 'जब तू 5 वर्ष का था, तब तेरे ऊपर से तो माँ एवं पिता दोनों का साया उठ चुका था। फिर भी तेरी परवरिश हुई या नहीं। हर व्यक्ति अपने पुण्य-पाप लेकर आया है। यह तेरा अभिमान है कि तू स्वयं को दूसरों का पालक एवं पोषक समझता है। अपने अभिमान का त्याग करा। अभी तो मामीजी विद्यमान है, फिर तू स्वयं को ही अभिभावक क्यों

मान रहा है और जैसे ही निर्णय हुआ, मन हल्का हो गया एवं कदमों में वेग आ गया।

**श्रेयांसि बहुविघ्नानि** अर्थात् अच्छे कार्यों में बहुत अड़चनें आती हैं, यह प्राचीन उक्ति है। श्री जवाहरलाल जी का जीवन भी इसका अपवाद नहीं था। बड़े पिताजी और परिजनों ने साम निति से आगे बढ़कर दण्ड एवं भेद नीति के भी भरपूर प्रयोग किये किन्तु क्या सुमेरु का शिखर कभी प्रलय की हवाओं से विचलित हो सकता है? नहीं कदापि नहीं, सुमेरु है इसलिए नहीं। क्या सच्चा वैराग्य दण्ड, दबावों, आँसू या प्रलोभनों से विचलित हो सकता है? नहीं, कदापि नहीं, सच्चा वैराग्य है इसलिए नहीं।

अन्ततः विवश होकर परिजनों को दीक्षा की अनुमति देनी पड़ी। संवत् 1948 मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को लीमड़ी में आपकी दीक्षा हुई। दीक्षा गुरु थे श्री मगनलालजी म.सा.। मात्र डेढ़ माह पश्चात् ही यकायक श्री मगनलाल जी म.सा. का स्वर्गवास हो गया। माता-पिता एवं मामा के वियोग का सहन करने वाले मुनि जवाहर गुरु वियोग की आकस्मिक वेदना को न झेल सके। माता-पिता तो एक जन्म का यत्किंचित् सुख ही दे सकते हैं लेकिन गुरु तो अनन्तकाल के शाश्वत सुख हेतु अनन्य सहयोगी होते हैं। मुनि जवाहर का मन विक्षिप्त जैसा हो गया। बार-बार गुरुदेव को याद करते एवं शोकमग्न रहते, भयभीत रहते। ऐसे समय में मुनि श्री मोतीलालजी म.सा. ने उन्हें मनोयोग से संभाला। पढ़ना, लिखना, व्याख्यान देना, बड़ी-बड़ी तपस्याएँ करना एवं जनता में प्रसिद्धि जमाना से कार्य फिर भी सरल है, लेकिन वृद्ध एवं ग्लान उस पर भी मानसिक रूप से ग्लान मुनि की सेवा करना अत्यंत कठिन है। श्री मोतीलालजी म.सा. ऐसा दुष्कर वैयावृत्य तप साधकर अपनी आत्मा को निर्मल बना रहे थे। लगभग पाँच मास के बाद मुनि जवाहर के सिर के पिछले भाग में प्लास्टर लगाया गया, जिससे सिर

से लगभग तीन किलो पानी निकला, तब पुनः स्वास्थ्य स्वस्थ हुआ। स्वास्थ्य की अनुकूलता के पश्चात् मुनिश्री अध्ययन में प्रवृत्त हुए। साथ ही वे समय-समय पर काव्य रचना आदि भी किया करते। धीरे-धीरे आपने प्रवचन देना भी प्रारम्भ कर दिया। जब मुनिश्री की दीक्षा पर्याय मात्र आठ वर्षों की थी एवं वय मात्र 24 वर्षों की तब आचार्य श्री चौथमलजी म.सा. ने संघ की सुव्यवस्था हेतु जो पाँच गण बनाये, उनमें से एक गण का नेतृत्व आपको प्रदान किया। अनेक दीर्घ पर्याय वाले मुनिराजों के विद्यमान होने पर भी आपको गण का अग्रेसर बनाना आपके गुणों का ही परिणाम था।

जैन धर्म की एक सम्प्रदाय 'दया-दान' जैसे गुणों को एकान्त पाप मानती है। पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा. ने जब उनके 'भ्रम विध्वंसन' ग्रंथ को पढ़ा जिसमें उन्होंने शास्त्रों के अर्थों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया था तो जिनशासन की सुरक्षा के प्रति पूज्यश्री का भाव प्रबल हो गया। जिस समय पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा. का चातुर्मास जोधपुर था उस समय उस सम्प्रदाय के आचार्य श्री डालचंदजी म.सा. का चातुर्मास भी वहीं था। उनकी मिथ्या मान्यताओं को चुनौती देते हुए सात प्रश्न स्थानकवासी समाज की ओर से प्रस्तुत किये गये, जिनका उन्होंने चातुर्मास में कोई उत्तर नहीं दिया न ही सम्यक् प्रकार से शास्त्रार्थ के लिए तत्पर हुए। अपने पूरे जीवनकाल में पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा. ने बालोतरा, जैतारण इत्यादि अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ करके सत्य जैन धर्म की ध्वजा फहराई एवं जैन धर्म के नाम पर मिथ्या मत का प्रचार करने वालों को बोध दिया। कठिन परिषहों को सहकर भी आपने थलीप्रदेश में विचरण करके आत्माओं को सद्बोध प्रदान किया।

पूज्य श्री जवाहर के उपदेशों से सिंचित् थलीप्रदेश के अनेक श्रावकों की पीढ़ियाँ आज तक शुद्ध धर्म का पालन कर रही थी।

पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा. ने अनुभव किया था कि संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का सम्यक्ज्ञान न होने के कारण आगमों के अर्थ का अनर्थ किया जा रहा है। उस समय स्थानकवासी मुनियों में संस्कृत के विद्वान् मिलना मुश्किल था। आपने निश्चय किया कि मैं अपने शिष्यों को संस्कृत का अध्ययन कराऊंगा एवं उसके लिए आपने महाराष्ट्र की ओर विहार किया एवं श्री गणेशीलालजी म.सा. तथा श्री घासीलालजी म.सा. को पंडितों के द्वारा संस्कृत भाषा का अध्ययन करवाया। स्थानकवासी समाज के बहुसंख्यक मुनि एवं श्रावक वैतनिक पंडितों से अध्ययन के विरोध में थे, मगर पूज्यश्री ने निर्णय किया कि एक बार कुछ मुनियों को संस्कृत भाषा का विद्वान बनाना जरूरी है अन्यथा आगमों एवं आगमों के व्याख्या ग्रन्थ-टीका, चूर्ण, भाष्य आदि के अर्थों का ज्ञान नहीं हो सकेगा तथा ज्ञान के अभाव में क्रिया शुद्ध नहीं रह सकती। वे मुनि बाद में अन्य मुनियों को अध्ययन करा सकते हैं ताकि बाद में मुनियों को वैतनिक पंडितों से न पढ़ना पड़े। आज इस सम्प्रदाय में जो विशिष्ट क्रिया एवं विशिष्ट विद्वता परिलक्षित हो रही है, वह पूज्यश्री जवाहर की दूरदृष्टि एवं अटल निश्चय का ही परिणाम है।

आचार्य श्री चौथमलजी म.सा. ने तीन वर्ष के अल्पकाल तक आचार्य पद को सुशोभित किया। तदनन्तर आचार्य पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा. ने संघ का नेतृत्व किया। आचार्य श्री श्रीलाल जी म.सा. ने अपने रतलाम चातुर्मास के समय सम्प्रदाय की सुव्यवस्था के लिए मुख्यतः पाँच गण बनाये, जिसमें से एक गण की सार-संभाल का दायित्व श्री जवाहरलालजी म.सा. को दिया गया। कुछ वर्षों के पश्चात् आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. ने युवाचार्य पद के लिए भी श्री जवाहरलालजी म.सा. का नाम घोषित कर दिया। मुनिश्री उस समय महाराष्ट्र में विचरणशील थे। आचार्यश्री का संदेश मिलने पर आपश्री

विद्यार्थी मुनियों को महाराष्ट्र में ही छोड़कर रतलाम पधारे। रतलाम में दोनों महापुरुषों का मिलन हुआ एवं चैत्र कृष्णा नवमी बुधवार संवत् 1975 दिनांक 26 मार्च, 1919 को हजारों की जनता के बीच मुनि श्री जवाहरलालजी म.सा. को युवाचार्य पद की चादर ओढ़ाई गई। आचार्यश्री ने संघ को निर्देश दिया कि वे युवाचार्यश्री की आज्ञा की सम्यक् आराधना करें एवं युवाचार्यश्री को भी संकेतपूर्वक आशीर्वाद दिया कि पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. के सम्प्रदाय में ज्ञान, दर्शन, चारित्र में अभिवृद्धि करें एवं पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा संयम के जिस स्तर को कायम रखा गया है, उसे और ऊँचा उठायें। युवाचार्यश्री ने भी उद्बोधन में अपनी विनम्रता: प्रस्तुत करते हुए एवं स्वयं को सम्प्रदाय का अकिंचन सेवक बतलाते हुए हुक्म सम्प्रदाय एवं जिनशासन की गौरववृद्धि हेतु उद्यत रहने का संकल्प लिया।

जैतारण में आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. का अचानक स्वर्गवास होते ही सम्पूर्ण संघ का भार आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. के कंधों पर आ गया। उस समय आपश्री भीनासार विराजमान थे एवं तेले की तपस्या थी, जिसे बढ़ाकर आपने आठ दिन का तप कर लिया एवं आगे भी करना चाहते थे, लेकिन श्रीसंघ के अत्यन्त आग्रह से आपने पारणा किया।

आचार्य बनने के कुछ महिनो पश्चात् आपने उदयपुर में सम्प्रदाय का सम्मेलन किया, जिसमें लगभग 40 संत एकत्र हुए। इस सम्मेलन में साधु समाचारी सम्बन्धी एवं अन्य कलमों का भी निर्धारण किया गया।

जलगाँव चातुर्मास के पूर्व आचार्यश्री के हथेली में जहरीला फोड़ा हो गया। ऑपरेशन के अलावा फोड़े के ठीक होने का कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था। चिकित्सकों को कहना था कि फोड़े पर

चाकू लगाने के बाद हो सकता है कि जहर सारे शरीर में फैल जाए। इस भावी खतरे को जानकर आचार्यश्री ने चिंतन-मनन-विमर्श करके भविष्य की शासन व्यवस्था की बागडोर पूज्य श्री गणेशीलालजी म.सा. को देने का निर्णय कर लिया। सेठ वर्धमानजी पितलिया ने व्यवस्था पत्र का ड्राफ्ट बनाया एवं मुनिश्री घासीलालजी म.सा. ने उसकी नकल की। उस कागज को पूज्यश्री ने अपने पास रख लिया। फोड़े का ऑपरेशन एवं मधुमेह की बीमारी का इलाज भी शुरु हुआ। ऑपरेशन के समय पूज्य श्री ने क्लोरोफार्म नहीं सूँघा एवं होश में रहते हुए ही ऑपरेशन करवाया। सहनशीलता एवं शरीर के प्रति अनासक्ति का यह विशिष्ट उदाहरण था। ऑपरेशन सफल हुआ। धीरे-धीरे आचार्यश्री का स्वास्थ्य अनुकूल हो गया।

आचार्य श्री के विचार इतने उन्नत, दूरदृष्टि सम्पन्न, गहन चिंतन से उद्भूत एवं यथार्थस्पर्शी थे कि अनेक उच्च पदस्थ व्यक्ति आचार्यश्री के पास पहुंचकर आचार्यश्री के विचारों से लाभान्वित होते थे। महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, मदनमोहन मालवीय, प्रोफेसर राममूर्ति, विनोबा भावे, सेनापति बापट, मनुभाई मेहता, रतलाम नरेश, सरदार पटेल, श्री पट्टाभिषीता रामय्या, दो मोरवी नरेश, पोरबंदर नरेश आदि अनेक गणमान्यों ने समय-समय पर आपके दर्शन करके एवं आपके उदात्त विचारों को श्रवण करके दिशा प्राप्त की। गांधीजी ने तो यहाँ तक कहा कि हमारे देश में दो जवाहर हैं।

एक जवाहरलाल नेहरू जो घड़ी के बाहरी कांटे की तरह गतिमय हैं तथा एक पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा. जो घड़ी की अन्दरूनी मशीन की तरह देश में आन्तरिक तौर पर जागृति ला रहे हैं। लोकमान्य तिलक द्वारा लिखी गई पुस्तक 'गीता रहस्य' में जैन धर्म के सम्यक् दृष्टिकोण को न समझने के कारण जो अन्यथा लेखन हुआ था उसके विषय में पूज्यश्री से स्पष्ट जानकारी प्राप्त होने पर तिलक

महोदय ने अगले संस्करण में उसे शुद्ध करने की बात स्वीकार की। राष्ट्रधर्म, खादी, अछूतोद्धार, पर्दाप्रथा इत्यादि अनेक सामाजिक विषयों में पूज्यश्री के विचार इतने सशक्त एवं सचोट होते कि कई व्यक्तियों के जीवन में गहरा परिवर्तन आया। इस प्रकार आचार्यश्री सामाजिक क्रांति के महान संवाहन थे। संवत् 1989 में चुरु में 12 प्रस्ताव पारित किये गये थे, उसमें से 12वें बोल में यह निर्णय किया गया कि भविष्य में जिन भी मुनियों की दीक्षा होगी वे सब आचार्य के नेत्राय में ही होगी। सभी मुनि आचार्य के ही शिष्य होंगे। यह व्यवस्था आचार्यश्री की दीर्घदृष्टि एवं अनुभवों का परिणाम थी। भिन्न-भिन्न शिष्य परम्पराओं से होने वाली छिन्न-भिन्नता एवं पारस्परिक खींचातान का जो दुष्परिणाम समुदाय की व्यवस्था एवं व्यक्तिगत साधना पर पड़ रहा था उसे बारम्बार अनुभूत करते हुए ही आचार्यश्री की भावना एक शिष्य परम्परा पर स्थिर हुई थी।

धर्मसंघ की उन्नति के विषय में भी आपके प्रवचन तेजोमय एवं दीर्घदर्शिता से ओत-प्रोत हुआ करते। संवत् 1990 के अजमेर सम्मेलन में आप अपने पूरे सम्प्रदाय का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व लेकर पधारे किन्तु जब वहाँ एकलविहारियों को भी बतौर प्रतिनिधि शामिल किया गया तो आचार्यश्री ने वहाँ प्रतिनिधित्व स्वीकार नहीं किया। अन्ततः मुनियों के अत्याग्रह के कारण आप सलाहकार की हैसियत से सम्मेलन में शामिल हुए। इसी सम्मेलन में आपने वर्धमान संघ की योजना रखते हुए अपने बुलंद एवं सशक्त स्वर में कहा-‘अगर हम स्थानकवासी समाज की उन्नति चाहते हैं तो हमें एक ही मुख्याचार्य के नेतृत्व में रहना चाहिए एवं समूचे संघ की शिक्षा, दीक्षा आदि एक ही के अधीन रहनी चाहिए।

उपस्थिति मूर्धन्य मुनिराजों ने आचार्य श्री के विचारों की सराहना की एवं सम्पूर्ण संघ एक हो इसके लिये वातावरण बनने लगा। पूज्य

श्री हुक्मीचंदजी म.सा. की सम्प्रदाय से अनेक मुनियों का सम्बन्ध विच्छेद चल रहा था एवं सम्प्रदाय से बहिर्वर्ती मुनिराजों ने श्री मन्नालालजी म.सा. को अपना आचार्य बना रखा था। संघऐक्य योजना का प्रारम्भ आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. एवं आचार्य श्री मन्नालालजी म.सा. के ऐक्य से हो, ऐसी अनेकों की भावना थी। अजमेर में मनैयों के नोहरों में आचार्य श्री अमोलकऋषिजी म.सा., युवाचार्य श्री काशीरामजी म.सा., शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी म.सा., श्री मणिलालजी म.सा. एवं कविवर्य श्री नानचंद्रजी म.सा. इन पाँच पंचों को मुकर्रर किया गया। पाँचों ने फैसला दिया, जिसे दोनों आचार्यों ने मंजूर किया। वह फैसला इस प्रकार था-

1. मुनि श्री गणेशलालजी म.सा. को युवाचार्य पद पर नियत करें।
2. मुनि श्री खूबचंदजी म.सा. को उपाध्याय पद पर नियत करें।
3. अब से जो नये शिष्य हो, वे युवाचार्य की नेत्राय में रहें।
4. भविष्य के धाराधरण दोनों पूज्य मिलकर बाँधे।
5. पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. की सम्प्रदाय के चौमासे ठहराने की और दोषशुद्धि करने की सत्ता दोनों पूज्यों की हयाती तक दोनों पूज्यों की रहेगी और एक आचार्य रहने पर एक आचार्य की होगी।
6. फैसला मिलने के साथ ही परस्पर बारह संभोग खुले करें।

इस प्रकार दोनों समुदायों में पारस्परिक ऐक्य हो गया किन्तु श्री चौथमलजी म.सा. ने पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. द्वारा निष्कासित घासीलालजी म.सा. से सम्बन्ध कायम रखा, इत्यादि कारणों से एकता लम्बे समय तक टिक नहीं पाई। अजमेर सम्मेलन के निर्णयानुसार पंडित मुनि श्री गणेशलालजी म.सा. को फाल्गुन शुक्ला तृतीया संवत् 1990 को जावद में आचार्यश्री ने युवाचार्य पद की चादर ओढ़ाकार संघ का उत्तरादायित्व सौंप दिया।



आचार्यश्री का विहार यथासंभव गुजरात-सौराष्ट्र की ओर हुआ। धर्म की भव्य प्रभावना करते हुए आचार्यश्री का पुनः मारवाड़ की ओर पधारना हुआ। शरीर का स्वभाव जीर्ण-शीर्ण होना है। आचार्यश्री को मधुमेह की बीमारी थी। वृद्धावस्था भी अपना प्रभाव दिखाने लगी। धीरे-धीरे विहार करते हुए आप बीकानेर पधार गये। अस्वस्थता की स्थिति में अनुकूलता हेतु भीनासर में विराजना हुआ। शरीर शनैः शनैः शिथिलता की ओर जा रहा था। एक दिन आचार्यश्री स्वाध्याय करके उठ रहे थे तो आधे अंग में शिथिलता आने लगी। चिकित्सकीय जाँच से ज्ञात हुआ कि पक्षाघात (लकवा) हो गया है। शरीर में व्याधियों को उभरते देख आचार्यश्री ने अपने जो उद्गार व्यक्त किये वे इस प्रकार हैं।-

1. साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध श्रीसंघ से मैं अपने अपराधों के लिये अन्तःकरणपूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

2. मेरा शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है। जीवन शक्ति उत्तरोत्तर घट रही है। इस बात का कोई भरोसा नहीं है कि इस भौतिक शरीर को छोड़कर प्राणपखेरू कब उड़ जाये। ऐसी दशा में जब तक ज्ञान-शक्ति विद्यमान है, भले-बुरे की पहचान है तब तक संसार के सभी प्राणियों से, विशेषतया चतुर्विध श्रीसंघ से क्षमायाचना करके शुद्ध हो लेना चाहता हूँ। मेरी आप सभी से विनम्र प्रार्थना है कि आप भी शुद्ध हृदय से मुझे क्षमा प्रदान करें।

3. मेरी अवस्था 67 वर्ष की है। दीक्षा लिये पचास वर्ष से अधिक हो गए हैं। इस समय में मेरा चतुर्विध संघ से विशेष सम्पर्क रहा है। संवत् 1975 से श्रीसंघ ने तथा पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा. ने सम्प्रदाय के शासन का भार मेरे निर्बल कन्धों पर रख दिया था। पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा. के समान प्रतापी महापुरुष के आसन पर बैठते

हुए मुझे अपनी कमजोरियों का अनुभव हुआ था, फिर भी गुरु महाराज तथा श्रीसंघ की आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझकर मैंने उस आसन को ग्रहण कर लिया। इसके बाद शासन की व्यवस्था के लिए मैंने समयोचित बहुत-से परिवर्तन और परिवर्द्धन शास्त्रानुसार किये हैं। संभव है उनमें से कुछ बातें किसी को गलत या बुरी लगी हो मैं उनके लिये सभी से क्षमा माँगता हूँ।

4. मैं साधुवर्ग का विशेष क्षमाप्रार्थी हूँ। उनके साथ मेरा गुरु और शिष्य के रूप में, सेव्य और सेवक के रूप में तथा दूसरे कई प्रकारों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मैंने शासनोन्नति के लिए ज्ञान, दर्शन और चारित्र की रक्षा के लिए संगठन बुद्धि के लिए शास्त्रानुमोदित कई नियमोपनियम बनाए हैं, जिन्हें मुनियों ने सदा वरदान की तरह स्वीकारा है। फिर भी मेरे किसी बरताव के कारण किसी मुनि के हृदय में चोट लगी हो, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट पहुँचा हो तो मैं उसके लिए बार-बार क्षमायाचना करता हूँ। मेरी आत्मा की शांति और निर्मलता के लिये वे मुझे क्षमा प्रदान करें। इसी तरह जो मेरे द्वारा क्षमा के उत्सुक है उन्हें मैं भी अन्तःकरणपूर्वक क्षमा प्रदान करता हूँ। मैंने अपनी आत्मा को स्वच्छ एवं निर्वैर बना लिया है।

5. अपनी सम्प्रदाय का संचालन करने और सामाजिक व्यवस्था करने के लिए मुझे दूसरी सम्प्रदाय के आचार्य तथा बहुत से स्थिविर मुनियों के सम्पर्क में आना पड़ा है। किसी-किसी बात पर मुझे उनका विरोध भी करना पड़ा है। उस समय बहुत संभव है, मुझसे कोई अनुचित या अविनय युक्त व्यवहार हो गया हो। मैं अपने उस व्यवहार के लिए उन सभी से क्षमा माँगता हूँ। मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर वे सभी आचार्य तथा स्थिविर मुनि मुझे क्षमा प्रदान करने की कृपा करें।

6. मैं जिस बात को हृदय से सत्य मानता हूँ उसी का उपदेश

देता रहा हूँ। बहुत से व्यक्तियों से मेरा सैद्धांतिक मतभेद भी रहा है। सत्य का अन्वेषण करने की दृष्टि से उनके साथ चर्चा-वार्ता करने का प्रसंग भी बहुत बार आया है। यदि उस समय मेरे द्वारा किसी प्रकार प्रतिपक्षियों का मन दुःखा हो, उन्हें मेरी कोई बात बुरी लगी हो तो उसके लिए मैं हार्दिक क्षमा चाहता हूँ। मेरा उसके साथ केवल विचार भेद ही रहा है। वैयक्तिक रूप से मैंने उन्हें अपना मित्र समझा है और अब भी समझ रहा हूँ। आशा है वे मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

7. मैंने जो व्याख्यान दिये हैं उनमें से मण्डल ने कई-कई चातुर्मासों के व्याख्यानों का संग्रह कराया है। इस विषय में मेरा कहना है कि जिस समय जो-जो मैंने कहा है वह जैन आगमों और निर्ग्रन्थ प्रवचनों की दृष्टि में रखकर ही कहा है। यह बात दूसरी है कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार विचारों में भी परिवर्तन होता रहा है। फिर भी मैं छद्मस्थ हूँ। मुझसे भूल हो सकती है। मैं सत्य का गवेषक हूँ। सभी को सत्य ही मानना चाहिए। असत्य के लिए मेरा आग्रह नहीं है। मुझे अपनी बात की अपेक्षा सत्य अधिक प्रिय है। मेरी शारीरिक अशक्ति के बाद पहले जो साधु मेरी सेवा में रहे हैं, उन्होंने मेरी सेवा करने में कुछ भी बाकी रहने नहीं दिया। अपने कष्टों को भूलकर वे प्रत्येक समय प्रत्येक प्रकार से मेरी सेवा में तत्पर रहे हैं। स्वयं सर्दी, गर्मी एवं भूख प्यास के परिषहों को सहकर भी उन्होंने मेरी सेवा का ध्यान रखा है। इसके लिए मैं उनकी सेवा का हार्दिक अनुमोदन करता हूँ। उनके द्वारा की गई सेवा का आदर्श नवदीक्षितों के लिए मार्गदर्शक बनेगा।

9. लगभग आठ वर्षों से शारिरिक अशक्ति के कारण मैंने साम्प्रदायिक शासन का भार युवाचार्य श्री गणेशीलालजी को सौंप रखा है। उन्होंने जिस योग्यता, परिश्रम और लगन के साथ इस कार्य को निभाया और निभा रहे हैं, वह आपके समक्ष है। मुझे इस बात का परम

संतोष है कि युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. ने अपने को इस उत्तरदायित्व पूर्ण पद का पूर्ण अधिकारी प्रमाणित कर दिया है और कार्य अच्छी तरह संभाल लिया है। साथ में इस बात की भी मुझे प्रसन्नता है कि श्री संघ ने भी इनको श्रद्धापूर्वक अपना आचार्य मान लिया है। इनके प्रति आपकी भक्ति तथा आप सभी का पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता रहे और इसके द्वारा भव्य प्राणियों का अधिकाधिक कल्याण हो, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

10. सज्जनों! जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। संसार में जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहता है। यह शरीर तो एक प्रकार का चोगा है, जिसे प्राणी स्वयं माता के गर्भ में तैयार करता है और पुराना होने पर छोड़ देता है। पुराने चोगे को छोड़कर नये-नये चोगे पहिनते जाना जीवन के साथ अनादिकाल से लगा हुआ है। इसमें हर्ष या विषाद की कोई बात नहीं है। हर्ष की बात तो हमारे लिए तब होगी जब इस चोगे को इस रूप में छोड़ेंगे कि फिर नया न धारण करना पड़े। वास्तव में नवीन चोगे का धारण करना ही बंधन है और उसे उतारना छुटकारा है। जब यह चोगा हमेशा के लिए छूट जायेगा वही मोक्ष है। अतः यह चोगा छूटने पर भी आत्मसमाधि कायम रहे, यही मेरी भावना है।

11. अंत में यही चाहता हूँ कि मैंने संसार त्याग करके भगवती दीक्षा ग्रहण की है। उसकी आराधना में जो प्रयत्न अब तक किया है उसमें मेरी शारिरिक या मानसिक स्थिति कैसे भी रहे, भंग ना हो। उसमें प्रतिदिन वृद्धि हो सके। मैं आराधक बना रहूँ।

आचार्यश्री के ये उद्गार व्याख्यान में सुनाए गए। श्रद्धाभिभूत श्रोताओं की आँखों से अश्रु बहने लगे। प्रवचन सभा में एक बार के लिए नीरवता, निःशब्दता छा गई।

लकवे की बीमारी पूरी ठीक हो, उससे पूर्व ही कमर के पीछे बाईं ओर जहरीला फोड़ा उठ आया, जिससे भयंकर वेदना होती। उस फोड़े को ठीक होते-होते लगभग छः महीने लग गये। उसके बाद भी गर्दन एवं भिन्न स्थानों पर छोटे-छोटे फोड़े उठ आये। आचार्यश्री की सेवा में सभी मुनि अहर्निश लगे रहते। रात्रि के समय भी क्रमिक रूप से मुनिगण जागकर आचार्यश्री की सेवा में तत्पर रहते। एकदा रात्रि को मुनि श्री नानालालजी म.सा. ने नाड़ी देखी तो कुछ प्रतिकूल लगी, युवाचार्यश्री को निवेदन किया। युवाचार्यश्री ने भी देखा तो आयु की स्थिति लम्बी नहीं लग रही थी। अगले दिन करीब पौने बारह बजे तिविहार संधारा एवं करीब एक बजे चौविहार संधारा करा दिया। संधारे के समय भी आपके चेहरे पर एक अलौकिक एवं दिव्य आभा चमक रही थी। उसी दिन अर्थात् आषाढ शुक्ला अष्टमी संवत् 2000 दिनांक 10.7.1943 को लगभग 5 बजे आचार्यश्री की दिव्य चेतना ने नाशवान देह से संबंध त्याग कर देवलोक की ओर प्रयाण कर दिया। लगभग एक वर्ष पूर्व ही आचार्यश्री की नाजुक स्थिति देखकर श्रावक वर्ग ने एक स्वर्ण मंडित चाँदी की डोली तैयार कर ली थी। पूज्यश्री की देह को उसमें रखकर शमशान की ओर ले जाया गया एवं डोली सहित चिता पर रख दिया गया।

आचार्य श्री जवाहर युगदृष्टा महापुरुष थे। उनकी अन्तर्दृष्टि संघ एवं समाज के सुन्दर भविष्य हेतु सम्यग् मार्ग को देखने वाली थी। उन्होंने अनेक श्रेष्ठ योजनाएँ संघ विकास एवं साधना विकास हेतु प्रस्तुत की थी। अज्ञान के कारण काफी समय से चली आ रही आगम विपरित मान्यताओं को बदलकर आगमानुरूप शुद्ध धारणाओं को प्रस्तुत करने में आप कभी भय नहीं खाते। मौलिक सिद्धान्तों की अटल सुरक्षा करते हुए आपश्री ने साधु समाज एवं श्रावक समाज को आध्यात्मिक क्षेत्र में ऊँचा उठाने हेतु जो अनुपम चिंतन प्रस्तुत किये, उन्होंने पूरे युग

को एक नई दिशा दी। अतः उन्हें 'युगपुरुष' के सम्बोधन से भी पुकारा जाता है। सत्य के प्रति अटल आस्था ने उनमें विशिष्ट निर्भयता का संचार कर दिया था। श्रुतधर्म एवं चारित्रधर्म की सुरक्षा राष्ट्रधर्म की सुव्यवस्था के आधार पर ही रह सकती है। इसे विचार कर आचार्यश्री ने राष्ट्रधर्म एवं स्वतंत्रता के विषय में इतने प्रभावशाली प्रवचन दिये कि मध्यप्रदेश के 'नई दुनिया' नामक प्रसिद्ध समाचार-पत्र ने अभी कुछ वर्षों पहले स्वतंत्रता सेनानियों की सूची प्रकाशित की। उसमें उसने आचार्य श्री जवाहर का नाम उल्लेखित किया गया। परमात्मा के प्रति भक्ति के उनकी अन्तर वीणा के झंकृत तारों का मधुर परिणाम था। जब आचार्यप्रवर विनयचंद चौबीसी (तीर्थकरों की स्तुतियाँ) को गते तो उस समय प्रभु में लीनता से भावविभोर बने। उनके चेहरे का दर्शन जो आनन्द पैदा करता था, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। दूसरी तरफ आचार्य प्रवर जब शास्त्रार्थ के समय सशक्त तर्कों से परवादियों के मिथ्या मतों का तेजस्विता से खण्डन करते, उस समय उनकी भाव-भंगिमा सूर्य के समान चमकती-सी प्रतीत होती थी। गौर वर्ण, विशाल देह, घुटने तक लम्बी भुजाओं से सुशोभित देह से वे जब ईर्यासमिति में लीन होकर भूमि पर दृष्टि टिकाकर हर कदम जीवरक्षा की भावना से ओतप्रोत होकर रखते थे, उस समय की संयमनिष्ठ चेतना की झलक कुछ अद्भुत ही दिखलाई पड़ती थी। विविध गुणों से समुज्ज्वल आचार्यश्री की यशोगाथाएँ आज भी इस भारत भू-भाग में गूँज रही हैं, जन-जन को साधना पथ पर प्रेरित कर रही हैं।

## अनुशासनप्रिय, संयमनिष्ठ आचार्य प्रवर १००८ श्री गणेशलालजी म.सा.

मेवाड़ की भूमि राणा प्रताप जैसे रणवीरों की प्रसविनी भूमि है। वहाँ की आन, बान और शान समूचे देश में अपना अलग ही महत्व प्रख्यापित करती है। उसी मेवाड़ में उदयपुर प्रान्त में देवस्थान विभाग के खजांची श्री साहेबलालजी मारु की धर्मपत्नी धर्मशीला श्रीमती इन्द्राबाई की रत्नकृषि से श्रावण कृष्णा तृतीया संवत् 1947 को पुत्ररत्न का जन्म हुआ। नाम रखा गया गणेशलाल। बालक धीरे-धीरे माता-पिता की वात्सल्यपूर्ण छाँव में बड़ा होने लगा।

आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. का चातुर्मास उदयपुर हुआ तब बालक गणेशलाल लगभग 9 वर्षों के थे। पिता के साथ प्रवचन एवं पूज्यश्री की पर्युपासना हेतु जाया करते। आचार्यश्री के प्रवचन श्रवण करके साहेबलालजी की भावनाएँ संसार त्याग करके संयम स्वीकार करने की हो गई। उन्होंने अपनी भावना पूज्यश्री के समक्ष व्यक्त भी की भगवन् मैं चाहता हूँ कि मैं परिवार सहित आपश्री के चरणों में संयम स्वीकार करूँ। बच्चे छोटे हैं अतः इच्छा ना होने पर भी कुछ विलम्ब करना होगा। आचार्यश्री ने गणेश को पूछा- तुम दीक्षा लोगे? उसने भी कहा-क्यों नहीं, मैं भी दीक्षा लूंगा। बालक गणेश के चेहरे पर उसकी भीतरी प्रतिभा एवं गुणवत्ता चमक रही थी। आचार्य श्री के निर्मल हृदय पर बालक गणेश की छिपी दिव्यता प्रतिबिम्बित हो गई। आचार्यश्री ने कहा- साहेबलालजी, यह बालक होनहार है। इसमें मुझे एक उज्ज्वल भविष्य का दर्शन हो रहा है।

पहले के रिवाज के अनुसार छोटी-सी उम्र में विवाह हो गया। जब गणेशलालजी 15 वर्ष के हुए उस समय पूरे देश में प्लेग जैसे जानलेवा रोग का भयंकर प्रकोप हुआ। प्रकोप इतना भयंकर था कि

कहते हैं कि मात्र जयपुर राज्य में 76,000 मकानों की चाबियाँ राजकोष में जमा होने आई, जिनके परिवार में एक भी व्यक्ति नहीं बचा। उदयपुर में भी सैकड़ों व्यक्ति प्रतिदिन काल के गाल में समा रहे थे। बहन दो वर्ष पहले ही स्वर्ग सिधार गयी थी एवं इस महामारी ने गणेशलालजी के माता-पिता, पत्नि एवं छोटी-सी पुत्री को भी अपना ग्रास बना लिया। एक क्षण में ही हरा-भरा उद्यान मरुस्थल बन गया। संसार की वास्तविकता आँखों में ही नहीं दिल पर भी अपना चित्रण कर गई। सूने घर में गणेशलाल का मन संसार से विरक्ति की राह ढूँढने लगा। वे बारम्बार आत्मचिंतन में लीन बनकर आत्मा के सच्चे लक्ष्य पर बढ़ने हेतु विचार करने लगे।

इन्हीं दिनों पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा. का चातुर्मास उदयपुर में हुआ। पर्युषण के पश्चात् आश्विन मास में पूज्यश्री के प्रवचनों से प्रेरित होकर अपना अन्तर्वैराग्य उभर गया एवं आपने एकांत में अपनी भावनाएँ निवेदित की। पूज्यश्री ने भी सारगर्भित शब्दों में संसार स्वरूप का चित्रण किया। उसी समय गणेशलाल ने आजीवन ब्रह्मचर्य का नियम लेकर दूसरी शादी हेतु किये जाने वाले पारिवारिक आग्रह को विराम लगा दिया। तत्त्वों के ज्ञान एवं साधुचर्या के अभ्यास का क्रम प्रारम्भ हो गया और चातुर्मास पूर्ण होने के अगले ही दिन मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा (एकम), संवत् 1962 को दीक्षा देकर मुनि गणेशलाल को मोतीलालजी म.सा. का शिष्य बना दिया गया।

शिष्य का सबसे बड़ा गुण होता है गुरु की आज्ञा का मनसा-वाचा-कर्मणा आराधना करना। इस गुण को गणेशलालजी म.सा. ने बड़ी ही गहराई से आत्मसात् किया था। देखा जाता है कि गुरु के प्रति अपार भक्ति रखने वाले शिष्य को भी जब उसके मन के प्रतिकूल निर्देश, आज्ञा प्राप्त होती है तो उसका मन अनके संकल्प-विकल्पों में उलझ जाता है। इन संकल्प-विकल्पों में अपने

विचारों की पुष्टि एवं गुरु के निर्देश के अनौचित्य का ही पुनः पुनः चिंतन होता है। संकल्प-विकल्पों से रहित होकर गुरु की प्रत्येक इच्छा के अनुसार अपने मन को ढालना ही शिष्य के शिष्यत्व की कसौटी है, जिस पर श्री गणेशलालजी म.सा. अक्षरशः (पूर्णतः) खरे उतरे।

मुनि श्री गणेशलालजी म.सा. ने दीक्षा के पश्चात् 3-4 कि.मी. का विहार पूज्यश्री के साथ किया। पहले कभी पैरों से ज्यादा चलने का प्रसंग नहीं बना था। इतने से विहार में मुनिश्री के पैरों के छाले हो गए, कंधे व पैर दर्द करने लगे तथापि उन्होंने समभाव से सहन किया। संकल्प और अभ्यास से अविद्यमान गुणों का प्रकटीकरण एवं विद्यमान गुणों का सतत् विकास होता है। 3-4 कि.मी. के पद-विहार में भी जिन्हें कठिनाई आई, मुनिश्री ने देहासक्ति का परित्याग करके ऐसी साधना की कि समय आने पर उन्होंने अनेक कि.मी. के लम्बे विहार शास्त्रों के वजन को उठाते हुए किये। कभी-कभी तो शास्त्रों के साथ आहार-पानी उठाने का भी प्रसंग आया किन्तु मुनिश्री ने अभ्यास से देह को साध लिया था। मन की शक्ति के आधार पर ही शारीरिक शक्ति का हास एवं विकास होता है।

प्रथम चातुर्मास में ही मुनिश्री ने दशवैकालिक सूत्र मूल एवं श्री उत्तराध्ययन सूत्र के नौ अध्ययनों तक कंठस्थ कर लिया एवं श्री दशवैकालिक सूत्र के सात अध्ययनों का अर्थ पढ़ लिया तथा लगभग 40 थोकड़े कंठस्थ कर लिये।

पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा. के मन में शिष्यों को संस्कृत पढ़ाने की भावना थी। मुनि श्री गणेशलालजी म.सा. के रूप में उन्हें शिक्षा का योग्य पात्र भी प्राप्त हुआ। महाराष्ट्र की ओर विहार करके अनेक वर्षों तक पूज्यश्री ने मुनि श्री गणेशलालजी म.सा., श्री घासीलालजी म.सा. आदि को आगमों एवं थोकड़ों के अध्ययन के साथ ही संस्कृत

का अध्ययन कराया। संस्कृत का अध्ययन कैसा चल रहा है, इसे जानने के लिए श्रावकों ने बड़े-बड़े विद्वान पंडितों के द्वारा अनेक श्रावकों के समक्ष परीक्षा भी ली, जिसमें मुनिश्री ने व्याकरण में 82, साहित्य में 94 एवं मौखिक में 100 अंक प्राप्त किये।

पूज्य आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. द्वारा श्री जवाहरलालजी म.सा. को युवाचार्य मनोनीत कर दिये जाने पर श्री जवाहरलालजी म.सा. ने आचार्यश्री के चरणों में जाने हेतु विद्यार्थी मुनियों को महाराष्ट्र में ही छोड़कर रतलाम की ओर विहार कर दिया। मुनिश्री आदि का अध्ययन गतिशील रहा। संवत् 1968 से संवत् 1983 तक बीच में एक रतलाम चौमासे को छोड़कर 15 चातुर्मास महाराष्ट्र प्रान्त में हुए।

सेवा गुण के बिना विद्वता प्राणविहीन सुन्दर देह के समान है, जो सुन्दर तो है लेकिन किसी को आकृष्ट नहीं करती, न ही किसी का कुछ उपकार कर सकती है। सेवा से ही ज्ञान शोभायमान होता है। सेवा के भावों से ओत-प्रोत व्यक्ति में ही ज्ञान की गगनचुम्बी ऊँचाईयाँ एवं सागर-सी गहराईयाँ आ सकती हैं। मुनिश्री में सेवा-गुण कूट-कूट कर भरा था। एक बार जब श्री मोतीलालजी म.सा. को दस्तों की शिकायत हो गई, उस समय मुनिश्री की सेवा को देखकर किसी का सिर झुके बिना नहीं रह सकता। सारी साफ-सफाई करके मल का मुनि जीवन की रीति से परिष्ठापन करके प्रक्षालन के उपरांत आप क्षुधाशमन हेतु आहार करने बैठे। एक कवल हाथ से उठाकर मुँह में रखने ही वाले थे कि इतने में श्री मोतीलालजी म.सा. की आवाज आई। हाथ का कवल पात्र में रखकर मुनिश्री गणेशलालजी म.सा. पुनः जाकर सेवा में उपस्थित होकर परिष्ठापन, वस्त्र साफ करने आदि के पश्चात् हस्तप्रक्षालन करके आहार हेतु बैठे कि फिर वही आवाज। बिना खेद को प्राप्त हुए मुनिश्री निरन्तर भक्तिपूर्वक सेवा में तत्पर रहे। शास्त्रों को रटना एवं थोकड़ों को समझना, पाट पर बैठकर हजारों की

जनता को रिझाना, उपवास, बेला, तेला और मासखमण करना बहुत सरल है। बहुत से ज्ञानी और तपस्वी मिलेंगे, लेकिन कड़वी काठी सुनते हुए भी विनय एवं भक्तिपूर्वक सेवा में अहर्निश तत्पर रहने वाले महासाधक अंगुलियों पर गिनने लायक मिल जाये तो भी बड़ी बात है। तदुपरांत ज्ञानी होने पर भी सेवा में अपने सुखों को न्यौछावर कर देने वाले महात्मा तो और भी विरल होंगे। मुनि श्री गणेशलालजी म.सा. उन्हीं विरल महासाधकों में से थे जिन्होंने 'सेवा धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' सेवा धर्म परम् गहन है एवं योगियों के लिए भी दुःसाध्य है- इस उक्ति को आत्मसात् करते हुए सेवा को अपने कण-कण में रमाया था।

मुनिश्री के विशिष्ट गुणों के परिणामस्वरूप ही आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. ने जलगाँव में जहरीले फोड़े के ऑपरेशन से पूर्व भविष्य में शासन संचालन हेतु श्री गणेशलालजी म.सा. का नाम व्यक्त कर दिया था। श्री घासीलालजी म.सा. ने जो विद्यार्थी जीवन के समय से ही श्री गणेशलालजी म.सा. के प्रति ईर्ष्या भाव रखते थे, उन्होंने ईर्ष्या से अभिभूत होकर मुनिश्री के विषय में अनेक ऊल-जलूल आरोप लगाये एवं स्थान-स्थान पर मुनिश्री को नीचा दिखाने हेतु भरपूर प्रयास किये, लेकिन मुनि श्री ने परम समभाव को धारण करते हुए अपने मुनित्व को और अधिक तेजस्वी बनाया। चन्दन का यह विशिष्ट गुण है कि उसे पीसने वाले को भी वह सुगन्ध ही प्रदान करता है। मुनि श्री गणेशलालजी म.सा. भी चंदन के समान सच्ची सहिष्णुता के महान गुण से भरपूर थे।

संवत् 1990 में अजमेर में वृहत् साधु सम्मेलन के अवसर पर पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा. एवं पूज्य श्री मन्नालालजी म.सा. की सम्प्रदायों के एकीकरण हेतु 5 महामुनि पंच के रूप में नियुक्त हुए। उन्होंने भी दोनों आचार्यों के पश्चात् मुनि श्री गणेशलालजी म.सा. को

ही दोनों संघों का युवाचार्य घोषित किया एवं फाल्गुन शुक्ला तृतीया संवत् 1990 को जावद में आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. ने मुनि श्री गणेशलालजी म.सा. को युवाचार्य पद की प्रतीक रूप चादर ओढ़ाकर हुक्मसंघ के भावी सप्तम् आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। किन्हीं कारणों से श्री मन्नालालजी म.सा. के साथ संबंध दीर्घकाल तक कायम नहीं रह सके। युवाचार्यश्री ने विभिन्न क्षेत्रों में विचरण कर धर्म की महती प्रभावना की। संवत् 1998 का चातुर्मास आपने आगारों सहित बीकानेर के लिए स्वीकृत किया था। आचार्यश्री भीनासर में वृद्धावस्था एवं स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के कारण विराजमान थे। सरदारशहर संघ ने आचार्यश्री चरणों में किन्हीं मुनिराजों के चातुर्मास हेतु भावपूर्ण विनती प्रस्तुत की। आचार्यश्री भी सरदारशहर के लिए किन्हीं मुनियों को भेजना चाहते थे। मुनिराजों से चर्चा भी की, लेकिन भीषण गर्मी एवं उग्रविहार को देखते हुए कोई भी संत आचार्यश्री की भावना को मूर्तरूप नहीं दे पा रहे थे। आचार्यश्री को विचारमग्न देखकर युवाचार्यश्री ने कारण पूछा तो आचार्यश्री ने ये भाव फरमाये कि सरदारशहर वालों की भावना है किन्तु किसी मुनिराज की वहाँ हेतु जाने की भावना नहीं बन पा रही है। युवाचार्यश्री ने बिना कुछ सोचे तत्काल निवेदन किया- गुरुदेव, आज्ञा फरमाओ। सेवक चरणों में हाजिर है। आचार्यश्री- तुम चले जाओगे।

युवाचार्यश्री- जो आज्ञा। आचार्यश्री, युवाचार्यश्री की ऐसी बिना ननुनच किए आज्ञाकारिता को देखकर भावाभिभूत हो गये एवं उनके भीतर से आशीर्वाद की धारा बह चली। आशीर्वाद एवं कृपादृष्टि कोई मांगने या देने की वस्तु नहीं है। शिष्य का सच्चा शिष्यत्व देखकर गुरु के भीतर से स्वतः ही आशीष एवं कृपा बरसने लगती है। श्री गणेशलालजी म.सा. प्रारम्भ से ही इतने आज्ञाकारी एवं विनीत थे कि आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. भरे व्याख्यान में भी उन्हें प्रवचन देते

हुए टोककर बिठा देते तो भी उनके मन में कोई अन्यथा भाव उत्पन्न नहीं होता था। जिस शिष्य के अन्तर्मन में यह बात गहरी बसी होती है कि गुरु जो कहते हैं वह मेरे हित के लिए ही है, उसके मन में कभी गुरु के प्रति अभक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती।

संवत् 2000 की आषाढ शुक्ला अष्टमी को आचार्यश्री का स्वर्गवास हो गया एवं पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. आचार्य पद पर विराजमान हुए। आचार्य पद कोई पूजा, भक्ति, यश एवं अधिकार की सर्वोच्च भूमि नहीं है, वह कर्तव्यपालन, मानसिक दृढ़ता एवं संघसेवा की यज्ञभूमि है।

आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. निस्पृह, फक्कड़ एवं कठोर क्रियाधारी महापुरुष थे। उनके गायन में माधुर्य एवं वाणी में गहन तत्त्वबोध की सरसता थी। उनका जीवन सरल, निश्छल एवं पारदर्शी था। लुकाव-छिपाव व कपट से वे कोसों दूर थे। शिष्यों से भूल होती तो उन्हें स्पष्ट कहने में एवं शिक्षित करने में कोई संकोच नहीं था। आचार की शिथिलता उन्हें सर्वथा नापसंद थी। आचार में वज्र सम दृढ़ होते हुए भी उनका हृदय फूलों से भी सुकोमल था। संवत् 2009 के घाणेराव सादड़ी के वृहत् साधु सम्मेलन ने यह सिद्ध कर दिया कि आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. जैसे महासाधक शताब्दियों में कोई एक हुआ करता है।

मारवाड़ का घाणेराव सादड़ी नामक नगर गुरुकुल का एक अनेक कक्षों वाला विशाल भवन। ऐकता के जोश से भरे मुनियों व श्रावकों का बड़ी संख्या में समागमन। 22 सम्प्रदायों के 53 प्रतिनिधि मुनियों सहित 341 मुनि एवं 768 साध्वियों के धवल वेश में धवलिय बना सादड़ी शहर। अक्षय तृतीया दिनांक 27.4.1957 का दोपहर 3 बजे का समय। सम्मेलन के सुव्यवस्थित संचालन हेतु शांति रक्षक के

रूप में आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. के सानिध्य में सम्मेलन का प्रारम्भ। एक आचार्य के नेतृत्व में श्रमण संघ की स्थापना का लक्ष्य सर्वानुमति से स्वीकृत। चर्चाएँ होने लगी एवं सभी सम्प्रदायों के एकीकरण के रूप में श्रमण संघ निर्मित हुआ। समाचारी का निर्धारण हुआ। वैशाख शुक्ला अष्टमी को इस विशाल संघ का आचार्य कौन होवे? इस विषय पर चर्चा प्रारम्भ हुई और जैसे ही आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ने इस पद हेतु पूज्य श्री गणेशलालजी म.सा. का नाम प्रस्तुत किया तो तत्काल उपस्थित प्रतिनिधियों की सहमति के बुलंद स्वर गूँज उठे। इतने में ही आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. ने फरमाया कि मुझसे बिना पूछे ही आपने मेरा नाम कैसे रख दिया। मैं तो अपना पूर्व का भार भी कम करना चाहता हूँ। आप सबके वात्सल्य का मैं आभारी हूँ लेकिन चाहता हूँ कि मुझे इस पद से विमुक्त रखा जाए एवं अन्य किसी मुनिवर को इस पद पर प्रतिष्ठित करें। आचार्यश्री के ऐसा फरमाने पर भी उपस्थित अनेक विद्वान, दीक्षावृद्ध, वयोवृद्ध एवं अनुभवी संतों के सानुरोध निवेदन किया कि आप श्रमण संघ के आचार्य पद को स्वीकार करें। यह विषय सब मुनिवरों का है। अतः आपसे पूछने जैसी कोई बात नहीं है। सभी प्रतिनिधि संत आपके चरणों में समर्पण करना चाहते हैं, आप इस नेतृत्व को अंगीकार करें। इस प्रकार पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव- पूज्य श्री गणेशलालजी म.सा. श्रमण संघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जाये- सर्वसम्मति से पारित हुआ। तदनन्तर आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. ने फरमाया- मेरा शरीर वैसा नहीं रहा जैसा जवानों का होता है। आप वृहत् श्रमणसंघ का महान् उत्तरदायित्व मुझ पर डाल रहे हैं। आपके विश्वास का मैं आभारी हूँ किन्तु इस भार को उठाने में कठिनाई महसूस कर रहा हूँ। अतः यह उत्तरदायित्व किसी अन्य योग्य ज्ञानवृद्ध और उत्कृष्ट संयमी महात्मा को सौंपा जाये तो मुझे अत्यंत

प्रसन्नता होगी।

पूज्यश्री की उदारता से एक सुन्दर वातावरण का निर्माण हो गया। आपकी त्यागशीलता के प्रति श्रद्धा व्यक्त रखने के साथ-साथ सभी आपसे पद स्वीकार हेतु सानुरोध एवं साग्रह निवेदन करने लगे। इसी चर्चा के बीच मालवकेसरी श्री सौभाग्यमलजी म.सा. ने प्रस्ताव रखा कि मात्र सम्मान हेतु पंजाब के आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा. को आचार्य पद देकर सम्पूर्ण सत्ता एवं अधिकार श्री गणेशलालजी म.सा. के अधीन रखा जाये। सर्वसम्मति से यह निर्णय हो गया कि केवल सम्मान की दृष्टि से आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा. को आचार्य कहा जाये एवं श्रमण संघ के संचालन की सर्वसत्ताएँ एवं अधिकार उपाचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. को सौंपे जाये। आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. पद को लेने हेतु तैयार नहीं हो रहे थे। सभा विसर्जित हो गई। रात्रि के लगभग 3 बजे से ही एक के बाद एक मूर्धन्य संत आचार्यश्री के कक्ष में आकर आग्रह भरा निवेदन करने लगे एवं यहाँ तक कहने लगे कि यदि आप इस पद को नहीं स्वीकार करेंगे तो यह संगठन नहीं बनेगा। सारी जनता हम पर हँसेगी कि इतने संत एकत्र हुए उनमें से एक भी आचार्य पद की योग्यता वाला नहीं था। किन्हीं ने निवेदन किया- आज युवा मुनि पर वृद्धों का विश्वास नहीं एवं वृद्ध मुनि पर युवा मुनियों की आस्था नहीं है। आप ही ऐसी एक कड़ी हैं जिस पर सभी को विश्वास है। एक सम्प्रदाय के आचार्य का चयन करते समय भी सभी एकमत नहीं होते। कितनी बड़ी बात है कि सभी सम्प्रदायों के प्रतिनिधि सर्वसम्मति से आपको अपना सर्वेसर्वा स्वीकार कर रहे हैं। भरे हृदय के साथ किन्हीं ने कहा- आप जो आदेश देंगे, हम पालन करेंगे। हम सब आपका अनुशासन चाहते.....आदि। प्रतिक्रमण का समय हो जाने पर प्रतिक्रमण किया गया। प्रतिक्रमण के पश्चात् प्रातःकालीन सभा में उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचंदजी म.सा. ने

समस्त प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से पूज्य आचार्यश्रीजी के प्रति भावभीनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए प्रासंगिक वक्तव्य दिया-

मैं दो वर्षों से पूज्यश्री के परिचय में आया हूँ। आगरा और देहली में मुझे चरण सेवा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने सुन रखा था कि पूज्यश्री चट्टान की तरह कठोर हैं व अनुशासन में कड़क कदम उठाते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन करने और सेवा में रहने का प्रसंग आने पर मुझे अनुभव हुआ कि अनुशासन के नाते जितने कठोर हैं, उससे ज्यादा नरम एवं उदार भी हैं। हमने आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा. को नियत किया है, परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण वे एक स्थान में ही केन्द्रित हैं। उनकी साहित्य सेवा से संघ ऋणी है। इस हेतु उनके प्रति श्रद्धा एवं सद्भावना प्रकट की गई है। परन्तु हमारे विराट संघ को अनुशासित करने के लिए योग्य आचार्य की आवश्यकता है, जो साधु-साध्वी और श्रावक संघ में श्रद्धा एवं प्रेम की लहर पैदा कर सके। हम देखते आ रहे हैं कि छोटे-मोटे साधुओं के आचार्य चुने जाते हैं, उसमें भी एकाध व्यक्ति अड़े रहते हैं। परन्तु अखिल भारतवर्ष के लिये आपको सर्वानुमति से नियत कर रहे हैं। मुनिमंडल आपके अनुशासन की आवश्यकता महसूस करता है। अतः मैं निवेदन करूँगा कि आप हमारी तुच्छ प्रार्थना को जरूरी स्वीकार करेंगे।

आपके पीछे फौज तैयार है। आप जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, हम उसे मूर्त रूप देंगे। बहुत दिनों का बिछड़ा हुआ संघ मिलता है तो कठिनाई जरूर आ सकती है, परन्तु आचार्यश्री! आप उदार एवं अनुभवशील हैं। ऊँची-नीची भावनाओं को परखने वाले भी हैं और आपके नीचे आपके कार्यकाल को संभालने के लिये मंत्रीमण्डल रहेगा। वह व्यवस्थित रूप से सारा कार्यभार संभालेगा। अतः मैं आचार्यश्री से प्रार्थना करता हूँ कि वे उपाचार्य पद को स्वीकार कर लें।



प्रतिनिधि मुनियों की ओर से उपाध्याय श्री अमरचंदजी म.सा. उक्त वक्तव्य दे चुके थे तो सबके चेहरों पर मंद मुस्कान मुखरित हो उठी। पूज्य आचार्यश्रीजी भी उस प्रेममय वातावरण से अपने आपको अलिप्त नहीं रख सके और सब मुनिवरों के प्रेम से भरे आग्रह और सहयोग के आश्वासन को मान देकर श्रमण संघ के नेतृत्व को सुशोभित करने के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान की।

जब पूज्य आचार्यश्रीजी अपनी स्वीकृति फरमा चुके तो सब मुनिवरों की ओर से मरुधर केशरी श्री मिश्रीलालजी म.सा. ने पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा में अभिनन्दन अर्पित करते हुए निम्नलिखित व्यक्तव्य दिया-

अत्यंत खुशी का समय है कि अ.भा. स्थानकवासी जैन समाज के लिये सर्वसम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादड़ी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहाँ तक पहुँचे, तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यों करते हो? किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिए या विकास और संगठन का समय पक चुका इस कारण कहिये, आज हम सर्वसम्मत होकर सहर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात यह है कि जैन जगत् के चमकते सितारे पूज्य श्री गणेशलालजी म.सा. ने इस पद को स्वीकार करके हमें कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनि मण्डल की ओर से उन्हें कोटिशः धन्यवाद प्रदान करता हूँ।

वैशाख सुदी 13 को 40 हजार के लगभग जनता के बीच आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. के चरणों में विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक आदि जब अपना प्रतिज्ञा-पत्र प्रस्तुत कर रहे थे तो वह दृश्य एक्य एवं समर्पण का एक अलग ही आनन्दपूर्ण दृश्य उपस्थित कर रहा था।

तदनन्तर सोजत में माघ शुक्ला द्वितीय संवत् 2009 से आचार्यश्रीजी के नेतृत्व में मंत्रीमण्डल का सम्मेलन हुआ। उसके बाद जोधपुर में आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा., प्रधानमंत्री श्री आनंदऋषिजी म.सा., व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म.सा., कविरत्न श्री अमरचंदजी म.सा., सहमंत्री श्री हस्तीमलजी म.सा., पंडितरत्न बहुश्रुत श्री समर्थमलजी म.सा. का चातुर्मास संयुक्त रूप से हुआ ताकि चार मास में पारस्परिक विचार-विमर्शपूर्वक अनेक विवादित विषयों का निर्णय किया जा सके, लेकिन जो उत्साह मुनियों का सादड़ी में था, वह वैसा नहीं रहा। तदनन्तर भीनासर में संवत् 2013 में पुनः वृहत् साधु सम्मेलन आयोजित हुआ। इन सभी सम्मेलनों में आचार्यश्री का व्यक्तित्व एक अलग ही छाप छोड़ रहा था। आपश्री की सूझ-बूझ सभी मुनियों में आपके प्रति श्रद्धा में अभिवृद्धि करने वाली थी।

साधारण मनुष्य इन्द्रियों का गुलाम है। मुनित्व की प्रतिष्ठा इन्द्रिय विजय की साधना में है। मुनि भी जब आत्मिक सुख प्राप्ति के लक्ष्य से विमुख होकर इन्द्रियजन्य सुख एवं यश-कीर्ति की प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य बना लेता है तो मुनित्व कुम्हलाने लगता है तथा वृत्ति में एक भयंकर दोष प्रगट होता है, जिसका नाम 'स्वच्छंदता'। स्वच्छंदता व्यक्ति विशेष की साधना के लिये तो घातक है ही, सामुदायिक जीवन को अशांत बनाने में भी यह प्रमुख कारण है। स्वच्छंदता सरलता का गला घोटकर माया को जन्म देती है और आगम वचनों के अनुसार जहाँ माया है, वहाँ मित्रता नहीं रह सकती। 'मायां मित्राणी नासेइ' श्री दशवैकालिक सूत्र का यह वाक्य बहुत बड़े जीवंत सत्य को अभिव्यक्त करता है।

श्रमण संघ में भी स्वार्थ एवं स्वच्छंदता पैर पसारने लगी। माया के जहरीले धुँएँ में सुव्यवस्था का श्वास-निःश्वास लेना दूभर हो गया। आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. सत्य, संयम एवं अनुशासन के प्रबल

हिमायती थे। इन तीनों में समझौता करना स्व-पर को धोखा देना है। पाली प्रकरण, ध्वनिवर्धक यंत्र, सुतागमे की अप्रमाणिकता इत्यादि अनेक विषयों में आचार्यश्री ने जिनशासन सुरक्षा, संगठन एवं संयम की दृढ़ता हेतु जो ठोस एवं जनतांत्रिक पद्धति से निर्णय दिये उन्हें देखकर क्या जनसाधारण एवं क्या कॉन्फ्रेस के नेता, सभी वाह-वाह कर उठे कि आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. ने इतनी सुन्दर व्यवस्था दी है। इसके बावजूद जहाँ जो संशोधन होना चाहिए था, वह स्थिति दृष्टिगोचर नहीं हो पायी। अंततः आचार्यश्री सादड़ी में बनी सर्वमान्य समाचारी एवं संयम को सन्मुख रखते हुए तीर्थंकर देवों की शुद्ध निर्ग्रन्थ, श्रमण संस्कृति की सुरक्षा हेतु श्रमण संघ का परित्याग करके पुनः पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. संबंधी अपनी मूल स्थिति में उपस्थित हो गये।

आचार्यश्री जब भोपालपुरा, उदयपुर में विराजमान थे उस समय पंडित श्री समर्थमलजी म.सा. खींचन से विहार करके आचार्यश्री की सेवा में पधार गये। पारस्परिक विचार-विमर्श के पश्चात् बहुतश्रुत पंडितरत्न श्री समर्थमलजी म.सा. ने संवत् 2017 माघ कृष्णा पंचमी को आचार्यश्री के नेतृत्व में चलने का स्वीकृति-पत्र अपने हस्ताक्षर करके प्रस्तुत किया। वह स्वीकृति पत्र इस प्रकार हैं-

वंदे वीरम्-णमो णाणस्स

दिनांक 07.01.1961

आत्मकल्याण व आत्मशांति का एकमात्र अमोघ उपाय निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति है। अतः इसकी शुद्धता बनी रहना नितांत आवश्यक है। वर्तमान में कुछ श्रमण वर्ग में विकृतियाँ प्रवेश कर गई हैं। उनको दूर करने के लिये पूज्य श्री गणेशलालजी म.सा. ने शांतक्रान्ति का कदम उठाया, जो उचित एवं आदर्श है।

सिद्धांत व चारित्र की सुरक्षापूर्वक संगठन को सुदृढ़ एवं

चिरस्थायी बनाने की प्रबल इच्छा रखने वाला श्रमण वर्ग यह निर्णय करता है कि संयमी जीवन में प्रवेश पायी हुई विकृतियों को दूर करने के लिये एवं सम्यक्ज्ञान-दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हेतु हम शांतक्रान्ति के जन्मदाता पूज्यश्री 1008 गणेशलालजी म.सा. का नेतृत्व स्वीकार करते हैं।

**ऊपर मुजब का काम हम हृदय से निश्चय करते हैं।**

द. मुनि समर्थमल। संवत् 2017 माघ कृष्णा 5

स्वीकृति-पत्र पर हस्ताक्षर करने के बावजूद उन्होंने इसको अमलीरूप नहीं दिया। शारीरिक अस्वस्थता को देखते हुए आचार्यश्री ने दिनांक 18.04.1961 को चतुर्विध संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार एवं पूर्ण उत्तरदायित्व पंडितरत्न मुनि श्री नानालालजी म.सा. को सौंपने की घोषणा कर दी। लगभग डेढ़ वर्ष बाद दिनांक 30.09.1962 आश्विन शुक्ला द्वितीया संवत् 2019 को उदयपुर के राजमहल के प्रांगण में लगभग 30 हजार की जनता के बीच आचार्यश्री ने पंडित मुनि श्री नानालालजी म.सा. को युवाचार्य पद की प्रतीक स्वरूप चादर प्रदान करते हुए अपार निश्चिंतता का अनुभव किया।

आचार्यश्री की वृद्धावस्था हो चली थी। वृक्ष कितना ही विशाल, सशक्त, एवं सुन्दर हो, समय आने पर वह जीर्ण हो जाता है, पत्ते सूखकर गिरने लगते हैं एवं सम्पूर्ण वृक्ष का रस शुष्क होने लगता है। कैंसर जैसा रोग होने पर भी आचार्यश्री का आत्मबल बहुत सशक्त था। डॉक्टर कहते थे कि आचार्यश्री को ऐसी वेदना होती है कि दो हजार बिच्छु एक साथ डँक मारे। एक पोप को भी ऐसी बीमारी थी। मार्फिन के इंजेक्शन दिये जाने पर भी वह इतना चिल्लाता कि अस्पताल के पास वाले कक्ष के रोगियों की नींद हराम हो जाती और आचार्यश्री इस रोग को सहन करते हुए शांत-प्रशांत मुद्रा में विराजमान रहते थे।

दूर-दूर के दर्शनार्थी अस्वस्थता के समाचार जानकर आचार्य-प्रवर के दर्शनार्थ उपस्थित होते एवं आचार्यश्रीजी को प्रसन्नतापूर्वक विराजमान देखते तो कहते कि आचार्यश्रीजी तो स्वस्थ हैं, कौन कहता है कि बीमार है।

आर्चायत्व के विभिन्न दायित्वों की अनुपालना करते हुए भी आचार्यश्री का मुनित्व सतत् ज्योतिर्मय था। अंतिम समय में संलेखना साधकर मुनित्व की आराधना करने हेतु आप अत्यंत जागृत थे। देह से भिन्न शुद्ध आत्मद्रव्य की अनुभव दशा का रसपान आपकी साधना को निरन्तर आत्मस्थ एवं प्रसन्न रखता था। जीवन के अंतिम दिनों में यह आत्मभाव, तल्लीनता गहन से गहनतर होती जा रही थी। दिनांक 10.01.1963 को प्रातः प्रतिक्रमण के पश्चात् आचार्यश्री पद्मासन से विराज गये। दर्शनार्थियों के आवागमन के पश्चात् पुनः ध्यानस्थ हो गये, ध्यान के अनन्तर आँखें खोली तो उनमें एक आलौकिक तेज झलक रहा था। युवाचार्यश्री को पास बुलाकर कहा कि अब मुझे अपना अंतिम कार्य साधने योग्य लगता है।

कुछ समय पश्चात् आचार्यश्री ने संलेखना-संधारा स्वीकार करने के लिये बोलकर कहा कि इच्छाकारेण आदि की पाटियाँ व श्री दशवैकालिक सूत्र का चौथा अध्ययन आदि सुनाओ। पुनः फरमाया कि मैंने तीन दिन पूर्व श्री सूरजमलजी म.सा. के पास आलोचना कर ली एवं अभी भी आलोचना करके छज्जीवणिया सुन लिया है। अब मुझे कोई डॉक्टर, गृहस्थ स्पर्श न करें। दस बजकर बीस मिनट पर तिविहार संधारा ग्रहण किया और फरमाया कि अब यह कमरा खाली कर दो। मुझे एकान्त चाहिए, सभी अलग हो जायें। ऐसा कहकर आँखे बंद कर ली। थोड़ी देर बाद जब आँखें खोली तो उसमें विश्ववत्सलता के भाव टपक रहे थे। श्वास की गति थोड़ी तेज थी, मगर चेतना पूरी थी। अगले दिन करीब 12 बजे दोपहर को चौविहार संधारा पचक्ख लिया।

श्री पुष्करमुनिजी म.सा. की साध्वी श्री सोहनकंवरजी म.सा. 2 बजे पधारे तो भी आँख खोलकर गर्दन हिलाई। इतनी जागृत स्थिति में थोड़ी ही देर में तीन बजकर बीस मिनट पर 29 घंटे का संधारा पूर्ण हुआ एवं आचार्यश्री की दिव्य आत्मा इस निर्बल देह को त्यागकर देवलोक की दिशा में महाप्रयाण कर गई। आचार्यश्री का जीवन एक बालक के समान निश्छल एवं पवित्र जीवन रहा। आपका कंठ इतना मधुर था कि जब भजन की कड़ियाँ गाते तो कभी रास्ते चलते लोग भी ठहरकर सुनने लगते। संयम एवं अनुशासन में आचार्यश्री को कोई लचक पसंद नहीं थी। उनका जीवन ज्ञान में बहुत गहन था, आज्ञाराधना में अतिविशिष्ट था, सेवा में परम उद्यमी था, निस्पृहता में अनुपमेय था, सहिष्णुता में पृथ्वी सम था एवं यशस्विता में भी सर्वोच्च शिखरों पर था। श्री उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णित गर्गाचार्य के समान आपने निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिए मान-अपमान की परवाह न करते हुए जो दृढ़-चरण बढ़ाए उनकी प्रशंसा अनेक जिनशासन एवं संयम के प्रेमियों ने की। मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के एक समाचार-पत्र ने आपके इस कदम की अत्यन्त सराहना की एवं लिखा की भविष्य में आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. को इस ऐतिहासिक कदम के लिए याद रखा जायेगा। वे युगों तक महान् आदर्श के रूप में आराधनीय रहेंगे। मानापमान विजेता पूज्य श्री आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. का महान् जीवन युगों तक महान् आदर्श के रूप में स्थापित रहेगा एवं उनकी अनुपम क्रांति की मशाल सुदीर्घकाल तक शुद्ध, संयम एवं अनुशासन का प्रकाश प्रकाशित करती रहेगी।

## गंभीर महासाधक आचार्य प्रवर १००८ श्री नानालालजी म.सा.

आचार्य श्री नानेश एक ऐसे युगपुरुष हुए जिनके नाम से युग पहचाना जाता है। बेटा जब माँ से पूछता है कि घटना कब हुई तो माँ कहती है- बेटे! जब अपने गुरुदेव आचार्य श्री नानेश इस भूमि को पावन कर रहे थे, उस समय यह घटना घटित हुई। सामान्य मनुष्यों का परिचय समय से करवाया जाता है लेकिन कुछ अलौकिक महापुरुष वक्त की पहचान बन जाते हैं। समय का परिचय उन महापुरुषों के नाम से करवाया जाता है। जैसे- भगवान महावीर के समय ऐसा-ऐसा हुआ, भद्रबाहु स्वामी के वक्त ऐसा-ऐसा हुआ, आचार्य श्री नानेश के समय ऐसा-ऐसा हुआ। आखिर क्या था उस मंझले कद के, सावले वर्ण के, सागर सम गहरे नयनों वाले, सौम्य पर तेजस्वी मुखाकृति वाले, उच्च ललाट वाले, निःस्पृह किन्तु वत्सल निगाहों वाले, शान्त किन्तु दृढ़ मन वाले, प्रेरक पर संयमबद्ध वाणी के स्वामी, कोमल किन्तु सिद्धान्तों पर मेरुवत् अटल हृदय वाले, नपे-तुले अहिंसक कदमों से दुर्गम मार्गों को चिन्हित करने वाले, यतना से सधे हाथ और साधना से सधे चित्त वाले, इंसान का आकार होने पर साक्षात् भगवान के समान अनुभूत होने वाले उस महान् विभूति पुरुष में, जिसे चाहकर के भी भुलाया नहीं जाता, यादों से ओझल बनाया नहीं जाता।

राजस्थान की वीर प्रसविनी मेवाड़ भूधरा का वह छोटा-सा ग्राम दाँता, ओसवाल जाति का प्रसिद्ध पोखरना वंश, मोड़ीलालजी और श्रृंगारबाई के पुण्यों का सुफल - देवलोक से एक दिव्य चेतना अवतरित हुई। तिरने और तिराने के लिये यह अवतार हुआ था। नामकरण हुआ गोवर्धन।

समय की अविश्राम गति वर्तमान की घटनाओं को क्षणों में ही

अतीत की स्मृतियाँ बना देती है। बालक गोवर्धन अब निकवर्ती कस्बे भादसोड़ा में पंडितजी से प्रारम्भिक ज्ञान पढ़ने लगा। पंडितजी ने उससे कहा - सभी विद्यार्थियों से फीस वसूल करके मुझे देना। गोवर्धन ईमानदारी और प्रामाणिकता के संस्कार गर्भ से ही साथ लाया था। फीस वसूल करने के बाद पंडितजी को देते हुए कहने लगा- पंडितजी यह सिक्का अमुक का है, यह सिक्का अमुक का है। एक समान सिक्कों को अलग-अलग दिखाने की जरूरत नहीं थी, लेकिन बालक गोवर्धन की स्पष्टता एक कदम बढ़कर थी।

घर में सबसे छोटे होने के कारण पारिवारिकजन प्यार से 'नाना' कहने लगे। मेवाड़ की भाषा में नाना का अर्थ होता है छोटा। एक कहावत है कि हीरे ढूँढे जाते हैं बनाए नहीं जाते। महापुरुषों में जन्मजात कुछ ऐसे गुण होते हैं जिनकी नींव पर उनके महान् जीवन का प्रसाद खड़ा होता है। बालक नानालाल माँ के इतने आज्ञाकारी थे कि कोई भी छोटा-बड़ा काम, यहाँ तक कि लघुशंका करने जाते तो भी पूछकर जाते। उस जमाने में स्त्री शिक्षा पर जोर नहीं था। माता श्रृंगार बाई को रुपये की कितनी पाई होती है, इतना भी नहीं आता था। आज्ञाकारिता बड़ों के प्रति विनय और भक्ति से पैदा होती है, उनके ज्ञानादि के नाप-तौल से नहीं। वैसे तो बालक नानालाल शैशव से ही एकान्तप्रिय, अल्पभाषी और मननशील वृत्ति के थे, लेकिन दूसरों का कष्ट देखकर उनका हृदय द्रवित हुए बिना नहीं रहता एवं वे अपने कार्य गौण करके भी उनकी सेवा में उद्यत हुए बिना नहीं रहते। उस छोटे गाँव में एक वृद्धा कठिनाई होने पर भी विवशतावश पानी का घड़ा भरकर ले जाती तो बालक नानालाल तुरन्त उठता और स्वयं घड़ा उनके घर पहुँचा आता।

बालक नानालाल मातृभक्त था। माँ के हाथ से ही खाता। कभी पिता ने खिलाना चाहा और नहीं खाया तो पिता क्रुद्ध हो जाते कि "मैं

क्या जहर खिला रहा हूँ'। फिर भी नानालाल का मातृप्रेम कम नहीं होता। इसी मातृप्रेम के कारण वे चाहते थे कि माँ सामायिक न करे। सामायिक करने पर मुझे उनका प्रेम प्रसाद नहीं मिल पाएगा। उन्हें लगा कि यह रेत की घड़ी है, इससे ही माँ सामायिक करती है तो उसे ही फोड़ डालने का प्रयत्न करते। न रहेगा बाँस न बजेगी बांसुरी।

महान् इंसान बचपन से कुछ असाधारण से ऊँचे लक्ष्यों की परिकल्पना करते हैं। पहली बार जब बालक नानालाल ने रेलगाड़ी देखी कि कोयले का इंजन छुक-छुक करता हुआ अपने पीछे अनेक डिब्बों को खींचता चला जा रहा है और भीतर में सोचने लगा कि मैं भी बड़ा होकर अनेकों को अपनी शक्ति से खींचने वाला बनूँ। यह विचार अज्ञात रूप से आकार पाने का मार्ग ढूँढ रहा था।

पुण्यशाली पुरुषों को अनायास ही प्रगति के निमित्त मिल जाया करते हैं अथवा यूँ कहना चाहिये कि दिव्य चेतनाएँ मिलने वाले निमित्तों से प्राण ऊर्जा को खींचकर अपने जीवन को ऊर्जावान बना लेती हैं।

नानालालजी पोखरना की बहन मोतीबाई की ससुराल भादसोड़ा में था। पर्युषण के दौरान उन्होंने पाँच की तपस्या की। मेवाड़ प्रदेश की रीति के अनुसार पीहर पक्ष से नानालालजी बेस (देने योग्य वस्त्र) लेकर घोड़े पर सवार होकर भादसोड़ा पहुँचे। इच्छा न होने पर भी संबंधियों के अत्याग्रह से वहाँ विराजित संत श्री चौथमलजी के प्रवचन सुने। संवत्सरी के प्रवचन में उन्होंने छठे आरे के भयंकर दुःख एवं वनस्पति की हिंसा दुष्परिणामों के बारे में बताया। उसी दिन प्रवचन के पश्चात् नानालालजी वहाँ से घोड़े पर बैठकर अपने ननिहाल भदेसर की ओर रवाना हो गए। प्रवचन सुनते समय प्रवचन के विषय पर ज्यादा विचार नहीं आए किन्तु वन्यप्रदेश की प्राकृतिक सुषमा के बीच

घुड़सवारी करते हुए मन प्रवचन में सुने गए विषयों से विचारमग्न हो उठा। चिड़ियों की चहचहाहट, पत्तों की सरसराहट और घोड़े की टाप के सहज संगीत से सुरम्य बने नीरव से वातावरण में प्रकृति प्रेमी नानालाल के भीतर का अनाहतनाद गूँजने लगा- 'क्या मुझे भी छठे आरे की भयावह वेदनाओं का सामना करना पड़ेगा? क्या इस लोक के सारे ऐश-ओ-आराम उसी दुःख भरे परिणाम को देने वाले हैं? क्या इन दुःखों से बचने का कोई उपाय नहीं है 'अहो! मैंने इन सुन्दर सुकोमल-सी वनस्पतियों का कितना उपमर्दन किया है! मैंने कितने जीवों को कष्ट पहुँचाया है, उसका मुझे कैसा दुष्परिणाम मिलेगा' 'अहो! धर्म ही जीवन का सच्चा सार है' 'इस मनुष्य जीवन की सार्थकता तुच्छ विनश्वर भोगों के कीचड़ में डूब मरने में नहीं है बल्कि यह जीवन किसी अलौकिक अविनाशी तत्त्व की शुद्ध अनुभूति के लिए मिला है। अरे! मैंने माँ को सामायिक करने से रोककर कितने कर्मों का बन्धन कर लिया। 'स्वयं धर्म करना तो दूर लेकिन धर्म करने वाले को भी विघ्न पैदा करके मैंने महापाप किया है। 'मेरे समग्र दुष्कर्मों से मुक्ति का उपाय एकमात्र धर्म की शरण है'।

इस प्रकार के संख्यातीत विचार प्रवाह बादलों की तरह उमड़-घुमड़कर मन के आकाश में मंडराने लगे और देखते ही देखते वैरागी नानालाल की आँखों से जलधार बरसने लगी। जन्मों-जन्मों के पाप पश्चाताप के आँसुओं में धुल गए। जंगल का किनारा नजदीक आ गया। भदेसर ग्राम समीप आ पहुँचा।

इतनी जल्दी यह यात्रा कैसे पूरी हुई, कुछ भी पता नहीं चला। ग्राम के समीप आते ही किसी दूसरी दुनिया में ही खोए हुए मन को झटका लगा। अपने आपको भुला चुके मन को मुश्किल से खींचकर लाया गया। घोड़े को बाँधकर आँसुओं से भरी आँखों को छिपाने के

लिए हाथ-मुँह धोए और ग्राम में प्रवेश किया।

विचार बदलते हैं तो आचार भी परिवर्तित हुए बिना नहीं रहता। अचानक किशोर नानालाल की जीवनशैली में आए बदलाव को देखकर पारिवारिकजन हतप्रभ तो हुए ही, आशंकित भी हो गए कि 'छोरा कहीं हाथ से निकल न जाए'। धर्म की क्रियाएँ करना एक बात है और धर्म की समझ होना दूसरी बात है। जिसमें धर्म की सच्ची समझ होती है वह जानकर प्रसन्न होता है कि मेरे घर से कोई भव्यात्मा आत्मकल्याण के महापथ संयम पर बढ़ने जा रही है। उसका हृदय अत्यंत आह्लादित होता है। संयोगवशात् बड़े भाई मिटुलालजी में धर्म की वैसी समझ उत्पन्न नहीं हुई थी। नानालालजी अब धर्म-ध्यान में विशेष लग गये। मुनियों की सेवा में पहुँचकर ज्ञानार्जन करना चाहते थे, लेकिन पारिवारिकजन इस पर रोक लगाते रहते। दृढ़ संकल्प एक ऐसी वस्तु है जिसकी गति को बड़े-बड़े पर्वत और विशाल सागर भी रोक नहीं पाते। वह सर्वत्र अपनी राह बना लेता है। संकल्प की दृढ़ता नानालालजी की ऐसी संगिनी थी जो आजीवन उनकी चरणचैरी बनी रही। अन्ततः परिवार को झुकना पड़ा।

मार्ग है, इतने मात्र से वह अभीष्ट मंजिल को ले जाएगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वेश है, इतने मात्र से वह संयमी साधक है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। वैरागी नानालाल अनेक मुनियों से रूबरू हुए, लेकिन मन सन्तुष्ट नहीं हुआ। उस लघुवय में भी उनकी निगाहों में संयम की परख थी। कोई मुनि कहते- मेरे पास दीक्षा ले मैं सुन्दर पात्र दूंगा। कोई श्रावक कहते- हमारी सम्प्रदाय में दीक्षा लो, हम लिखकर हस्ताक्षर करके देते हैं, तुम्हें आचार्य बनाएँगे। कोई संत कहते- क्या करोगे दीक्षा लेकर, आंक बता देता हूँ, बम्बई जाकर भाग्य आजमाओ। वैरागी नानालाल सच्चे वैराग्य से भरपूर थे, उन्हें न पात्रों की सुन्दरता से प्रेम था, न आचार्य पद से मोह और न ही धन-वैभव

का आकर्षण। उन्हें ऐसे गुरु की तलाश थी जो सच्चे अर्थों में संयमी हो, साधनाशील हो, शास्त्रानुसार कहने वाले ही नहीं जीने वाले भी हों।

जहाँ चाह वहाँ राह - वैरागी नानालाल को ज्ञात हुआ कि जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा. के युवाचार्य पूज्य श्री गणेशलालजी म.सा. कोटा विराज रहे हैं, वे वहाँ पहुँचे और जैसे ही युवाचार्यश्रीजी की छवि पर नजर पड़ी कि मस्तक ही नहीं हृदय भी श्रद्धाविभोर होकर झुक गया। शांत-प्रशांत चेहरे पर अपूर्व संयमी तेज चुम्बक के समान अपनी ओर खींच रहा था। मंत्रमुग्धवत् वैरागी नानालाल ने ज्योंही युवाचार्यश्री को अपने भाव निवेदित किए, युवाचार्यश्री की निःस्पृह वचनावली ने उनके हृदय की कलियों को और अधिक खिला दिया। युवाचार्यश्रीजी ने फरमाया- दीक्षा लेना कोई हंसी-खेल नहीं है। अभी तुम ज्ञान-ध्यान सीखो। हम तुम्हें परखें और तुम हमको देखो। वैरागी नानालाल सोचने लगे कि कहाँ तो वे लुभावने आकर्षण कि चोले के पीछे संयम से भी आँख-मिचौली हो रही है और कहाँ इन अनासक्त योगी के वचन। मुझे तो अब सच्ची शरण मिल गई। इन्हीं चरणों में मेरा आत्मकल्याण सिद्ध होगा। युवाचार्यश्री के चरणाश्रय में मुमुक्षु नाना की ज्ञानाराधना एवं संयमीचर्या का अभ्यास गतिशील हुआ। अभ्यास की परिपक्वता एवं पारिवारिकजनों की अनुमति होने पर मेवाड़ के कपासन ग्राम में विशाल जनमेदिनी के समक्ष आम्रवृक्ष के तले युवाचार्यश्री ने मुमुक्षु नानालालजी को मुनि दीक्षा प्रदान की।

'मुनि दीक्षा' जैन धर्म की अत्यंत महत्वपूर्ण संस्कार विधि है, जिसमें गृहस्थ जीवन का सम्पूर्ण त्याग करके पूर्ण अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह की आराधना अनेक कठोर नियमोपनियमों के पालन के साथ की जाती है। क्रोध, अभिमान, आसक्ति पर विजय एवं इन्द्रियों का नियंत्रण इसमें आवश्यक है। अनुकूलताओं एवं प्रतिकूलताओं में समभाव को बनाए रखना इस साधना का महत्वपूर्ण

अंग है। जैन मुनि दीक्षा कोई महीने दो महीने की क्रिया पद्धति नहीं है, यह जीवनभर की भीष्म प्रतिज्ञा है, जिसे वीरों के वीर ही स्वीकार करते हैं। मुनिश्री नानालालजी संयम स्वीकार करने के बाद कठोर परिषहों को समता से सहने लगे। लोगों के परिचय से दूर रहकर वे आत्मचिन्तन, ज्ञानार्जन, गुरुसेवा आदि आत्मकल्याण रूप क्रियाओं में लीन बने। संयम की आचार विधियों का वे शुद्धता से पालन करने लगे। विनय, लगन व एकाग्रता से थोड़े ही समय में उन्होंने अच्छी विद्वता हासिल कर ली। कुछ वर्षों पश्चात् दिल्ली क्षेत्र में विराजते हुए मुनिश्री को संग्रहणी का रोग हो गया। मुनिश्री का संकल्प था कि जब तक वैद्य घुटने न टेक दें तब तक एलोपैथी दवा नहीं लेना। एक वैद्य ने कहा कि इस रोग की चिकित्सा तभी संभव है कि महिनों तक पर्पटी (औषध विशेष) का कल्प किया जाए। इस कल्प के दौरान पर्पटी औषधि की पुड़िया के अलावा सिर्फ दही का सेवन किया जा सकता है। मुनि श्री नानालालजी म.सा. ने कल्प स्वीकार किया। आश्चर्य! 9 महिनों तक निरन्तर मुनिश्री ने दही के सिवा किसी खाद्य वस्तु का सेवन तक नहीं किया। खाद्य पदार्थ ही नहीं, पानी तक नहीं पिया। कितनी कठोर साधना। मुनिश्री के मुँह का थूक तक सूख गया। वैद्यराज के मुख से भी बरबस ये स्वर फूट पड़े- “वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः! जितेन्द्रिय पुरुष ही वैद्य के कथनानुसार चल सकता है।

मुनिश्री की आत्मसाधना, ज्ञानोपासना निरन्तर प्रगतिशील थी। जिज्ञासु मन के लिए ज्ञान के साधन प्रकृति के कोने-कोने में रहे होते हैं। हर घटना, हर परिस्पन्दन, हर परिवर्तन उसके जागृत मस्तिष्क में एक नये दर्शन का संस्पर्श कर जाता है। मुनिश्री प्रारंभ से ही चिन्तक वृत्ति के थे। चिन्तन की गहराईयों में ही आगमिक सूत्रों के गूढ़ार्थ का उद्भव हुआ करता है। जनता से विलग और साधना में संलग्न इस महायोगी की साधना निरन्तर प्रवर्धमान थी।

वक्त की अपनी हवा होती है। एक तरफ भारत अपनी स्वतंत्रता के जयनाद गूँजा रहा था और दूसरी तरफ स्थानकवासी समुदाय भी ऐक्य की ओर कदम बढ़ा रहा था। जिधर देखो मुनिगण एकता की चर्चा करते नज़र आ रहे थे। श्रावक वर्ग भी उत्साह से भरपूर होकर स्थानकवासी समाज की एकता की कोशिशें कर रहा था। मारवाड़ के घाणेरव सादड़ी का वह गुरुकुल जिसके विभिन्न कक्षों में विभिन्न सम्प्रदायों के मुनिराज विराजमान थे। पारस्परिक एक समाचारी का निर्माण हो गया था।

आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. को नवनिर्मित श्रमण संघ का सर्वाधिकार पूर्ण उत्तदायित्व प्रदान किया। मात्र सम्मान के लिए पंजाब के वयोवृद्ध आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा. को आचार्य माना गया, परंतु संघ संचालन संबंधी समग्र भार एवं अधिकार उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. को सौंपा गया। चादर प्रदान की रस्म हुई और सभी उपस्थित मुनिराजों ने अपने-अपने प्रतिज्ञा पत्र श्रमण संघ के सर्वेसर्वा मालिक पूज्य श्री गणेशीलालजी म.सा. के चरणों में सौंपे।

मुनि श्री नानालालजी म.सा. घाणेरव सादड़ी सम्मेलन के सारे प्रसंगों पर आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. की छाया की तरह उनके साथ थे उनकी अंतर्मुखी साधना के साथ ही संघ संचालन के अनुभव भी समृद्ध होते गए। किसी भी समुदाय का कुशल नेतृत्व किसी साधना से कम नहीं हुआ करता, अपितु ऐसा कहना चाहिए कि नेतृत्व के समय आने वाली परिस्थितियाँ साधना को उच्च बनाती है और साधना की निर्मलता नेतृत्व कला को विकसित करती है। श्रमणसंघीय जटिल परिस्थितियों के समय मुनि श्री नानालालजी म.सा. की दूरदृष्टि, सैद्धान्तिक दृढ़ता, प्रज्ञाप्रखरता एवं शब्द संयोजना का कौशल उभरकर सामने आया, जिसके फलस्वरूप सरलमना पूज्य श्री गणेशाचार्य श्रमण संघ का नेतृत्व करते समय अपने आपको हल्का महसूस करते। मुनि

श्री नानालालजी म.सा. की लेखनी से निःसृत रचना जिन्होंने देखी उनमें से एक तो यहाँ तक बोल उठा कि मुनि श्री नानालालजी म.सा. किसी बैरिस्टर (वकील) से कम नहीं है। मुनिश्री के वाक्य इस प्रकार से बंधे होते थे कि कोई उससे अर्थ का अनर्थ नहीं निकाल सकता था। यह वचन सौष्ठव, भाषा समिति की सम्यक् आराधना से निष्पन्न हुआ था। कब, कहाँ, क्या, कितना, कैसे बोलना यह भाषा समिति की सम्यक् साधना करने वाला भली-भाँति समझता है। संयम की विशुद्ध आराधना आत्मगुणों को तो विकसित करती ही है साथ ही यतना की अनवरत साधना के फलस्वरूप अनेकानेक व्यावहारिक कलाओं में भी नैपुण्य विकसित हो जाता है।

जैस-जैसे समय बीतता गया, नितनवीन परिवेश मुनिश्री के जीवन को निखारते चले गए। साधारण एवं असाधारण व्यक्तियों में यही फर्क होता है कि जिन परिस्थितियों में साधारण व्यक्ति स्वयं को असहाय एवं विवश मानकर अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए रूदन करते रहते हैं, उन्हीं परिस्थितियों को असाधारण व्यक्ति साधना का सुन्दर अवसर समझकर उनके माध्यम से अपने जीवन रूपी हीरे को तराश लेते हैं।

आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. वृद्धावस्था की ओर ढलने लगे। सेवा का गुण तो मुनि श्री नानालालजी म.सा. में जन्म से ही था। एक वृद्धा को पानी घड़ा उठाते देखकर भी जिससे सेवा का हाथ बढ़ाए बिना रहा नहीं जाता, वह अपने प्रभु, स्वामी, गुरु की अहर्निश, अग्लान भाव से सेवा करे इसमें आश्चर्य ही क्या है। एक बार आचार्य श्री गणेश अचानक बेहोश हो गए। वृद्धावस्था तो थी ही, शारीरिक बीमारियाँ भी वेदनीय कर्मोदयवश देह को पीड़ित कर रही थी। लोग संथारे की चर्चा करने लगे। 'आचार्यश्री खाली नहीं चले जाएँ, अतः उन्हें संथारा करा देना चाहिए' जन-जन के मुख से एक ही आवाज

थी। मुनिश्री नाड़ी देखते तो उनकी अन्तरात्मा संथारे की गवाही नहीं देती। सामान्य व्यक्ति दिखने वाले हेतु, कारण, परिस्थिति के आधार पर निर्णय लेते हैं किन्तु साधक चेतनाएँ अन्तरात्मा के निर्देशों को ही दिशादर्शक मानती हैं। शुद्ध, निश्चल, और अहिंसक हृदयों से पवित्र आत्मध्वनि प्रकट होती है। मुनिश्री संथारा कराने को तैयार नहीं हुए। जगह-जगह कानाफूसी होने लगी कि 'नानालाल जी म.सा. को गुरुदेव से मोह है, मोह के वश होकर वे संथारा नहीं करा रहे हैं, वे गुरुदेव को खाली हाथ भेज देंगे। निन्दा-सहिष्णुता साधना की पहली शर्त है। मुनिवेश धारण करके गृहत्याग कर देने के बावजूद अनेक संत मान-सम्मान के कुमार्गों पर भटक जाते हैं, लेकिन वे उनमें से नहीं थे। वे प्रशंसा व निन्दा को राख की चिमटी के समान समझते थे। सारा संघ एक तरफ था और मुनि श्री नानालालजी एक तरफ थे। उन्होंने संथारा नहीं कराया। तीन दिनों के बाद गुरुदेव की बेहोशी टूटी। उसके बाद गुरुदेव लगभग डेढ़ साल तक विराजमान रहकर शासन की शोभा बढ़ाते रहे।

आचार्य पूज्य श्री गणेशीलालजी म.सा. का अन्तिम समय समीप आ रहा था। आचार्य की जिम्मेदारियों में एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है उत्तराधिकार सौंपने की। आचार्य पद तीर्थकरों का प्रतिनिधित्व करता है अतः आचार्य पद के योग्य व्यक्ति की परख भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। एक आचार्य यदि अपने पाट पर अयोग्य व्यक्ति को स्थापित कर दे तो वह अनन्त तीर्थकरों की असातना करने वाला होता है। अतः महान् आचार्य इसके लिए अत्यन्त जागरूक रहते हैं। आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. ने उदयपुर में लगभग 30 हजार की जनता के बीच आश्विन शुक्ला द्वितीया, संवत् 2019 में मुनि श्री नानालाल को युवाचार्य पद की चादर ओढ़ाकर जिनशासन को अमूल्य धरोहर दी एवं हुक्मसंघ की परम्परा में एक नया आयाम जोड़ा। कुछ माह पश्चात् ही



माघ कृष्णा द्वितीया को आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. का लगभग 29 घंटे के संधारे के साथ स्वर्गवास हो गया। अब आचार्य पद का महान् दायित्व आचार्य श्री नानालालजी म.सा. के ऊपर आ गया।

आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. का विहार उदयपुर के उपनगरों मेवाड़ के ग्रामों से होते हुए मालवा की ओर हुआ। आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. ने अपने जीवन की सांध्यवेला में संयमी जीवन की शुद्धता एवं अनुशासन को प्रमुखता देते हुए मान-सम्मान की परवाह किए बिना निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा हेतु वैधानिक आदेशों की अनुपालना न होने पर श्रमण संघ से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया था। परिणामस्वरूप स्थान-स्थान पर विरोध भी हुआ, परन्तु आचार्य श्री नानालालजी म.सा. की साधना के तेज एवं पुण्य प्रकर्ष से भव्य जाहोजलाली का प्रसंग बनता रहा एवं एक के बाद एक दीक्षा प्रसंग बनते गए। शासन का विस्तार एवं विकास होता हुआ चला गया। मालवा की धर्मप्रेमी जनता के बीच रतलाम एवं इन्दौर के दो चातुर्मास हुए। रतलाम चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री ने बलाई समाज के लगभग 17000 लोगों को स्वयं गाँव-गाँव विचरण करते हुए व्यसनमुक्त कराया एवं उन्हें 'धर्मपाल' नाम से अभिहित किया। आज धर्मपाल जैनों की संख्या विपुल है। इन्दौर चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री का छत्तीसगढ़ की ओर पधारना हुआ। श्रीयुत् सम्पतराजजी धाड़ीवाल का आग्रह रहा था कि गुरुदेव आप छत्तीसगढ़ पधारो, मैं आपके चरणों में समर्पित हो जाऊंगा।

छत्तीसगढ़ एक उर्वरा भूमि है। आचार्य श्री नानेश को वहाँ तक पहुँचने में अनेक परिषदों का सामना करना पड़ा। मुनि जीवन की कठोर चर्या एवं वहाँ के निवासियों का मुनि मर्यादा विषयक अज्ञान-इन दो कारणों से आचार्यश्री एवं सहवर्ती मुनिमण्डल को अनेक परीषद आए। महापुरुषों का जीवन उस गुलाब के समान होता है जो

कांटो की शय्या पर सोकर भी दुनिया को खुशबू और सौन्दर्य लुटाता है। भव्यात्माओं को तिराने हेतु भगवान के रूप में आचार्यश्री ने छत्तीसगढ़ में प्रवेश किया। उस उर्वर भूमि में आराध्यदेव ने ऐसी अमृतवृष्टि की कि आज तक वह भूमि सरसब्ज है और आज भी वहाँ की अनेक भव्यात्माएँ संयम जीवन ग्रहण करके शासन की शोभा बढ़ा रही हैं। रायपुर, राजनांदगाँव, एवं दुर्ग के तीन ऐतिहासिक चातुर्मास एवं अनेक क्षेत्रों में धर्मबीज का वपन करके आचार्य श्री विदर्भ पधारो। अमरावती निवासी इतने भावविभोर हो गए कि बड़ीसादड़ी का खुला चातुर्मास भी वहाँ के संघ से याचना करके अमरावती में कराया। इसी चातुर्मास में किए गए दोष की आलोचना, प्रायश्चित्त न करने के कारण पं. समर्थमलजी म.सा. का सम्बन्ध विच्छेद किया गया। वहाँ से आराध्य-प्रवर महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों को पावन करते हुए मध्यप्रदेश में पधारो। मन्दसौर में चातुर्मास सम्पन्न कर आचार्य प्रवर ने अगला चातुर्मास बड़ीसादड़ी में किया।

तदनन्तर उदयपुर में अनेक साधु-साध्वियों की उपस्थिति में साधु समाचारी का पुनर्निर्धारण किया गया। मेवाड़ प्रदेश आचार्य-प्रवर की जन्मभूमि, दीक्षाभूमि एवं आचार्य पदारोहणभूमि थी। मेवाड़ वीर प्रसविनी धरा है। यहाँ राणाप्रताप जैसे अनेक वीर शासक हुए हैं, जिन्होंने देश की आन, बान एवं शान के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। वह वीर भूमि आज अपने एक धर्मवीर लाल के चरणों को पाकर पुलकित हो उठी। आचार्य श्री नानेश का मेवाड़ के छोटे-छोटे गाँवों में विचरण हुआ। वहाँ से आचार्यश्री के पावन चरण ब्यावर चातुर्मास हेतु गतिशील हुए। ब्यावर वही भूमि है जहाँ वैरागी नानालालजी वैराग्यावस्था में कतिपय समय तक अध्ययन हेतु रहे थे। वैराग्यावस्था में भी उनकी साधनानिष्ठ दिनचर्या को देखकर श्री मोहनलालजी मूथा ने वहाँ विराजित वयोवृद्ध श्री बोथलालजी म.सा. के सम्मुख निवेदन

किया कि भगवन्! ये वैरागी दीक्षा लेगा तो आचार्य बनेगा। मोहनलालजी मूथा भी आगे चलकर थोकड़ों एवं कर्मग्रन्थ के इतने गहरे जानकार बने एवं साथ ही इतने अधिक विनम्र है कि विभिन्न सम्प्रदायों के विभिन्न साधु-साध्वियों एवं ज्ञानरसिक श्रावक वर्ग को उन्होंने थोकड़ों एवं कर्मग्रन्थ का अध्यापन कराया है।

ऐसे ब्यावर शहर की जनता ने आचार्यश्री के उपदेशों का भरपूर लाभ लिया। वहाँ से आचार्यश्री ने जयपुर में चातुर्मास किया, जहाँ आचार्यश्री ने निरन्तर जीवन की परिभाषा करते हुए प्रवचन फरमाये। वहाँ से विहार करते हुए आचार्य प्रवर के चरण मारवाड़, राजपूताना, थली प्रदेश की ओर गतिशील हुए। बीकानेर की धर्मप्रेमी जनता वहाँ शारीरिक निर्बलतावश विराजमान वयोवृद्ध मुनिराज आचार्य पदारोहण के समय से ही चातकवत् गुरुदर्शनों की बाट जोह रहे थे। बीकानेर संघ ने छत्तीसगढ़ में विराजमान आचार्य-प्रवर की विनती हेतु जाते समय जब मार्ग में मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म.सा. के दर्शन किए तो उन्होंने भी श्रीसंघ के साथ आचार्य-प्रवर को काव्य रूप में भाव निवेदन किए कि-

बीकाणो बिसरो मती, तिजोरी टकसाल।

अठी उठी अवलोक लो, मिले ना इसड़ो माल।।

उधर के क्षेत्र में आचार्यश्री ने पाँच चातुर्मास किए- 1. बीकानेर 2. सरदारशहर 3. देशनोक 4. नोखा 5. गंगाशहर-भीनासर। इनमें से सरदारशहर ऐसा क्षेत्र है जहाँ स्वर्गीय पूज्य श्री जवाहराचार्य, पूज्य श्री गणेशाचार्य ने कठोर परिषहों को सहन कर शुद्ध धर्मबीज का वपन किया था। यहाँ से विचरण करते हुए आचार्यश्री का मारवाड़ के दूसरे हिस्से जोधपुर संभाग की ओर विचरण हुआ। उस क्षेत्र के गाँव में पीढ़ियों से इस सम्प्रदाय के प्रति गहरी श्रद्धा भक्ति रही है। काफी वर्षों

बाद उस क्षेत्र में सम्प्रदाय के मुनिराजों का पदार्पण हुआ था, फिर भी जनता अपने धर्मगुरु को पाकर फूली नहीं समा रही थी। चातुर्मास जोधपुर शहर में हुआ। जहाँ आचार्यश्री के साथ ही पूज्य हस्तीमलजी म.सा. के शिष्य बड़े लक्ष्मीचंदजी म.सा. एवं मानमुनिजी म.सा. आदि ठाणा भी विराजमान थे। इस चातुर्मास के पश्चात् क्रमशः अजमेर, छोटे से गाँव राणावास एवं उदयपुर में चातुर्मास हुए। इसी समयावधि में कालजयी ग्रन्थ 'जिणधम्मो' की रचना हुई, जो जैन धर्म का पावन ग्रन्थ है। तदनन्तर आचार्यश्री ने गुजरात की भूमि को पावन किया। अहमदाबाद चातुर्मास के अनन्तर सौराष्ट्र में भावनगर में चातुर्मास किया, जहाँ बरनाला सम्प्रदाय के आचार्य श्री चम्पकलालजी म.सा. आदि ठाणा भी उसी स्थान पर विराजे। सौराष्ट्र विचरण के दौरान खंभात, दरियापुरी, लींबड़ी, गोंडल सम्प्रदाय की अनेक साध्वियों ने आचार्यश्री के चरणों में पर्युपासना करते हुए तात्विक रस प्राप्त किया। भावनगर चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री रतलाम पधारे, जहाँ स्थानकवासी समाज में कीर्तिमाननीय एक साथ 25 दीक्षाओं का भव्यातिभव्य प्रसंग बना। लगभग 1 लाख की जनता इस अद्भुत महोत्सव की साक्षी थी। रतलाम के जैन-जैनेतर एक रस से आगन्तुक मेहमानों की सेवा व्यवस्था हेतु हृदय खोलकर तत्पर हो गए।

तदनन्तर बम्बई (मुम्बई) संघ के अत्याग्रह से बोरीवली एवं घाटकोपर में दो चातुर्मास हुए। दक्षिण वालों काफ़ी आग्रह होने पर भी आचार्यश्री पूना तक ही पधारे एवं वहाँ से लौटकर जलगाँव एवं इन्दौर में वर्षावास किया। लगभग 11 महीनों तक इन्दौर के विभिन्न क्षेत्रों में आचार्यश्री का विराजना हुआ। इन्दौर संघ ने भरपूर सेवाएँ की और तब से लेकर अब तक इन्दौर संघ में चारित्रात्माओं का विराजना प्रायः निरन्तर बना हुआ है। उज्जैन संघ की काफ़ी विनती होने पर भी अगला चातुर्मास रतलाम में हुआ, जहाँ 63 मासखमण की तपस्याएँ हुईं।

शरीर स्वाभावतः जीर्ण-शीर्ण होने वाला है। महापुरुषों का शरीर भी इसका अपवाद नहीं होता। आचार्य-प्रवर महान् आत्मबली थे। वैराग्यकाल से ही वेदनीय कर्मों ने आपकी परीक्षा लेनी प्रारम्भ कर दी थी। मुनित्व के प्रथम चातुर्मास में ही मलेरिया हो गया जो लगभग 1 वर्ष तक चलता रहा। बाद में भी समय-समय पर अनेक रोगों ने आक्रमण किया किन्तु आचार्यश्री का मनोबल प्रबल था। रुग्णावस्था में भी आचार्यदेव की आत्मसाधना अबाध गतिशील रहती थी।

वृद्धावस्था के इस मोड़ पर आचार्यश्री का उत्तराधिकार प्रदान का चिन्तन गहराने लगा। हीरे की परख जौहरी ही कर सकता है। विद्यानगरी कानोड़ का वर्षावास पूर्ण करके अगले चित्तौड़गढ़ चातुर्मास में आचार्यश्री ने कुछ कार्यभार हल्का करने का निर्णय लिया। यद्यपि संघ में दीर्घ दीक्षा पर्याय वाले कुशलवक्ता, जनता पर प्रभाव रखने वाले अनेक संत विद्यमान थे, लेकिन आचार्यश्री की दृष्टि गुदड़ी के लाल मुनि श्री रामलालजी म.सा. पर पड़ी। आचार्यत्व की योग्यता मात्र बाह्य कलाओं के संग्रहालय में उत्पन्न नहीं होती, उसके लिए तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र की विशिष्ट साधना की उपवन भूमि ही अपेक्षित होती है। मुनि श्री रामलालजी म.सा. को आचार्यश्री कार्यभार सम्हालेंगे, ऐसा प्रायः किसी ने स्वप्न में भी सोचा नहीं था।

जहाँ ने पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि एवं जहाँ न पहुँचे कवि वहाँ पहुँचे अनुभवी। आचार्यश्री आत्मानुभूति के सागर थे। उनकी दृष्टि गहरे तक पहुँचने वाली थी। चित्तौड़गढ़ चातुर्मास में आचार्यश्री ने चातुर्मासिक विनितियाँ झेलने एवं संघों के विवाद निपटाने की जिम्मेदारी सौंपते हुए श्री रामलालजी म.सा. को मुनिप्रवर का सम्बोधन दिया। श्री रामलालजी म.सा. का नाम सुनकर एक बार के लिए संघ आश्चर्यचकित हुआ, अगले ही क्षण नतमस्तक। पूरे संघ को आचार्यश्री की दृष्टि पर विश्वास था। गुलाब खिलता है तो कांटे भी अवश्य निकल आते हैं,

इतिहास इस पर दृष्टिपात करे तो ज्ञात होता है कि अनेक महापुरुषों के जीवन विकास में कुछ विरोधी व्यक्तियों की अहम् भूमिका प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से होती है। कैकेयी न होती तो राम को आज कौन जानता? कंस न होते तो कृष्ण को कौन पहचानते? गौशालक एवं जमाली ने भगवान महावीर की विशिष्टता को स्पष्ट कर दिया। आचार्यश्री के निर्णय के पश्चात् भी ऐसे कुछ तत्त्व उभरने लगे।

चित्तौड़गढ़ के बाद छोटे से ग्राम पिपलियाकलां में चातुर्मास करके आचार्य श्री बीकानेर पधारे। बीकानेर में 21 दीक्षाओं के भव्य महोत्सव के पश्चात् आचार्यश्री ने प्रमुख मुनिराजों के समक्ष भावी युवाचार्य के रूप में मुनि श्री रामलाल जी म.सा. का नाम रखा। मुनि श्री रामलालजी म.सा. का जीवन इतना निष्पक्ष, निर्मल, आचारनिष्ठ एवं सात्विक था कि कुछ कहने की गुंजाइश ही कहाँ से रहे। प्रमुख मुनिराजों ने हस्ताक्षर कर दिए एवं बीकानेर के सेठिया कोटड़ी में युवाचार्य के रूप में श्री रामलाल जी म.सा. की घोषणा हो गई। बीकानेर संघ एवं तत्रस्थ साधु-साध्वियों के विशेष आग्रह से फाल्गुन शुक्ल तृतीया संवत् 2048 को जूनागढ़ के प्रांगण में आचार्यश्री ने सर्वाधिकारपूर्ण उत्तदायित्व की प्रतीक स्वरूप चादर को युवाचार्य श्री रामलालजी म.सा. पर ओढ़ाई। मंगल ध्वनियाँ चतुर्दिक् गुंजायमान हो उठी। स्वास्थ्य की अपेक्षित अनुकूलता न होने से आगे के चातुर्मास क्रमशः उदयरामसर, देशनोक, नोखा एवं बीकानेर में हुए।

सत्ता लोलुपता और स्वच्छन्दता की ख्वाहिश ने अच्छे-अच्छों को विकृत कर डाला है। कुछ मुनि भी इससे अछूते नहीं रह पाए। इन दो दुर्गुणों के साथ जब माया-कपट जुड़ जाता है, बारम्बार किये जा रहे अकृत्यों को, छिपाने की दुर्भावना जुड़ जाती है तो सत्य चरमराने लगता है और संयम चूर-चूर हो जाता है। कृत अपराधों का भय मनुष्य को गलियों में घुसने पर मजबूर कर देता है और व्यक्ति अपनी गलती

को बचाने के लिए दूसरों पर आरोप मढ़ने लगता है। मुनित्व पवित्रम स्वरूप है, लेकिन जब मन पर मायाजाल छा जाता है तो वेश भले रह जाए मुनित्व की भव्यता, महानता एवं गरिमा विलुप्त हो जाती है। कर्मोदयवशात् कुछ मुनि संघ से विलग हो गए।

आचार्यश्री आत्मसाधक थे। वे मर्यादाओं एवं अनुशासन के दृढ़ हिमायती थे। दिखने के लिए वे आचार्यत्व के कर्तव्यों को पालन कर रहे थे किन्तु भीतर से वे निर्लिप्त महासाधक थे। उनके भीतर शिष्यों का मोह नहीं, मर्यादाओं का प्रेम था। अतः वे इस घटनाक्रम में अविचलित रहे। गंगाशहर-भीनासर का चातुर्मास पूर्ण कर आचार्यश्री का ब्यावर एवं तदनन्तर उदयपुर पधारना हुआ। उदयपुर का दूसरा चातुर्मास आचार्यश्री का अन्तिम चातुर्मास था। इस चातुर्मास के पूर्व से ही आचार्यश्री को संघ-समाज से विशेष निर्लिप्त देखा जा सकता था। चिकित्सा एवं चिकित्सकों के प्रति भी उनके मन में गहरी अरुचि हो गई। आहार की मात्रा अत्यल्प हो गई। वैसे तो आचार्यश्री का प्रवचन के प्रारम्भ में प्रायः आनन्दघन चौबीसी गाया करते थे, लेकिन इन पिछले दिनों में वे यदा-कदा प्रवचन में पधारते तो यह भजन फरमाते-

**भजमन भक्ति युक्त भगवान, भरोसा क्या जिंदगानी का।  
चंचल अमल कमल दल ऊपर, ज्यों कण पानी का,  
जान तरल तू तन क्षणभंगुर, जंग में प्राणी का॥**

आचार्यश्री अपने अन्तिम समय के प्रति बहुत जागरूक थे। उन्होंने सख्त हिदायत दे रखी थी कि मुझे डायलिसिस नहीं कराया जाये। पुनः पुनः वे फरमाते रहते कि मुझे खाली हाथ मत भेजना (अर्थात् संथारा करा देना)। समय के साथ उनकी आहार के प्रति भी रुचि खत्म हो गई। शारीरिक परिस्थितियों की परीक्षा करके युवाचार्यश्री ने आत्मसाक्षी होने पर आचार्यश्री को कार्तिक कृष्णा द्वितीया सं. 2058

को प्रातः संथारे हेतु पूछा। आचार्यश्री ने स्वीकृति सूचक संकेत दिया। उन्हें संथारा करा दिया गया।

उसके पूर्व पिछली रात्रि में उन्होंने युवाचार्यश्री से प्रायश्चित्त प्राप्त किया। संथारे की खबर बिजली की तरह सारे देश में फैल गई। विभिन्न स्थानों पर विराजित साधु-साध्वियों ने भी जब आचार्यदेव के संथारे के समाचार सुने तो मानो हृदय थम से गए। देश के कोने-कोने में भक्तों की आँखों में तराई आ गई। कईयों के दिल जोर से धड़कने लगे। यत्र-तत्र संथारे की चर्चा होने लगी। अपने आराध्य के वियोग की कल्पना मात्र से शरीरों में बिजली के झटके-सी सिहरन दौड़ गई। घड़ी की हर टनकार मानो एक अज्ञात डर पैदा कर रहा था। आखिर रात को घड़ी में दस के टनके लगे। आधे घंटे बाद एक टनका और लगा। संथारे की अवधि में आचार्यश्री को संतगण स्वाध्याय आदि श्रवण कराते जा रहे थे। साढ़े दस बजे के करीब छः सौ साठ सैकण्ड के बाद आचार्य श्री नानेश के नेत्रयुगल से दिव्य तेज फूटा एवं फिर..... .। इस प्रकार जैन जगत् का एक जाज्वल्यमान सितारा अस्त हो गया।

आचार्य श्री नानेश का जीवन अपने प्रति कठोर, दूसरों के प्रति कोमल, अध्यात्मनिष्ठ, ध्यानयोगी, ज्ञानलीन, कर्तव्यपरायण, दृढ़ मनोबली, निर्भय चेता, सहिष्णुता का भण्डार, आत्मान्वेषक, संवेग से सरोबार महान जीवन था। साधुमार्गी संघ धन्य है कि उन्हें अपने गुरु के रूप में ऐसे आचार्य प्राप्त हुए एवं उनकी देन के रूप में आचार्य श्री 'राम' का सतत् सान्निध्य पाकर संघ अत्यन्त हर्षोल्लासित है एवं ज्ञान, दर्शन, चारित्र में निरन्तर अभिवृद्धि कर रहा है।

## दृढ़निश्चयी, दृढ़संयमी आचार्य-प्रवर १००८ श्री रामलालजी म.सा.

राजस्थान की तपोभूमि मरुधरा में करणी माता के मंदिर से प्रख्यात ग्राम देशनोक। मूल गोत्र भंसाली से जुड़े भूरा कुल के यहाँ अनेक घर हैं। इन्हीं में से एक सद्गृहस्थ नेमीचंदजी भूरा की धर्मसहायिका धर्मपरायण रत्नकुक्षिधारिणी माँ गंवरादेवी के दूसरे पुत्र का जन्म हुआ। चैत्र मास का शुक्ल पक्ष, जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम दशरथनन्दन राम, हमारे प्रभु तीर्थकर श्रमण भगवान महावीर, महाबलशाली अंजना पुत्र हनुमान का जन्म हुआ, वह इस युग की एक दिव्य विभूति को जन्म देकर पुनः जगत प्रसिद्ध हो जायेगा, यह बात उस समय केवलियों के अतिरिक्त कौन जानने वाला था। तिथि भी वह कि जब चौदहवीं का चाँद हो और वर्ष भी ऐसा कि जो काम पिछले सैंकड़ों वर्षों में नहीं हुआ, ऐसे एक आचार्य के नेतृत्व की ध्वजा को विशाल स्थानकवासी समाज के महल के ऊपर प्रतिष्ठित करने वाला हो। ऐसे संवत् 2009 की चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को शुभ मुहूर्त में जब लग्नेश सूर्य उच्चाभिलाषी था, गुरु भाग्य स्थान पर चमक रहा था, भाग्येश मंगल पराक्रम स्थान पर पराक्रमी दृष्टि से भाग्य एवं कर्म को एक साथ देख रहा था, मानो भाग्य एवं पुरुषार्थ के श्रेष्ठ समन्वय को प्रतिष्ठापित कर रहा हो। सिंह का केतु लग्न पर राजध्वज के समान फहरा रहा था, उच्च का शुक्र नीच भंग राजयोग का निर्माण कर रहा था, उस शुभ मुहूर्त में सिंह के सामन तेजस्वी बालक ने जन्म लेकर अपने कुल, वंश, ग्राम एवं धर्म संघ को यशस्वी बना दिया।

पाँच बहिनों एवं दो भाईयों के भरे-पूरे परिवार में आपका शैशव निखरने लगा। गवराबाई धार्मिक क्रियाओं एवं पारिवारिक कार्यों में उद्यमी महिला थी। नेमीचंद की मनोवृत्ति सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी से

ओतप्रोत थी। ज्येष्ठ भ्राता मांगीलाल भी सहजता, स्पष्टता एवं नियमितता का मूर्त रूप था। श्रेष्ठ बीज के बिना कभी श्रेष्ठ फल की परिकल्पना नहीं की जा सकती। माता-पिता की उच्च गुणवत्ता के बिना संतान में वैशिष्ट्य की कल्पना करना व्यर्थ है। अतः जैन शास्त्रों में साधु एवं विशेषतः आचार्य के लिये मातृपक्ष एवं पितृपक्ष की शुद्धि पर विशेष बल दिया गया है। गवरानन्दन राम उच्च एवं कुलीन धार्मिक खानदान से प्राप्त संस्कारों के परिणामस्वरूप एवं पूर्वजन्म के प्रभाव से धर्म के प्रति तीव्र रुचि रखते थे। राम की मेधा भी बहुत तीव्र थी एवं आपने विद्यालयी अध्ययन प्रारम्भ करने से पूर्व ही गणित के अनेक पहाड़े सीख लिए। गणित उस समय से लेकर आज तक आपका प्रिय विषय रहा है। गणित की प्रियता ने आपके भीतर समस्याओं को हल करने की ऐसा प्रज्ञा विकसित कर दी कि जीवन पथ पर उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओं का हल आपके बुद्धिबल से शीघ्र ही हो जाता है। बचपन के मित्रों के साथ के एक खेल में जब सभी अपने-अपने भविष्य की बातें कर रहे थे उस समय आपने दृढ़ता से कहा कि मैं तो दीक्षा लेकर साधु बनूँगा। अपनी बात का कथन दृढ़ता एवं मजबूती के साथ करने का अपना गुण आज भी उसी प्रकार कायम है। आज भी प्रवचन एवं ज्ञानचर्चा में भय एवं संकोच से रहित रहकर सैद्धान्तिक तथ्यों की सशक्त प्रस्तुति श्रोताओं के शिथिल मन में एक नई ऊर्जा एवं बल उत्पन्न कर देती है। समय की परतों को चीरकर देखें तो एक सत्य उभरकर सामने आ जाता है कि दुःखों की भूमि से उत्पन्न होकर एवं उसी से रस खींच-खींचकर ही महापुरुषों के जीवन का सुन्दर और स्व-पर को सुखदायी कल्पवृक्ष पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ करता है। इस संसार में यदि दुःख नहीं रहा होता तो जीवन दर्शन के अनेक पहलु अनछुए रह जाते। कष्टरूपी गोताखोरों में ही इतनी शक्ति है कि वे जीवन सागर में गहरे जाकर भीतर छिपे

अनमोल रत्नों को बाहर निकालकर रत्नाकर का रत्नाकरत्व प्रमाणित कर देते हैं।

बालक राम भी चर्म रोग से ग्रसित हो गया। अनेक उपचार किये पर सब व्यर्थ। प्रकृति माता में जन्मदात्री माता से भी अधिक निर्माणकारिणी शक्ति होती है। जब तक सही औषध नहीं मिल पाती, तब तक प्रकृति संतुष्ट कैसे हो सकती थी। परिवर्तन के लिए दो तत्त्वों की अपेक्षा होती है- प्रयत्न और धैर्य। प्रयत्न तो हम सभी करते हैं, लेकिन धैर्य के दुर्गम मार्ग से हम अधिकतर फिसल जाते हैं और परिणाम आता है- असफलता। धैर्य का गुण हमें प्रकृति से सीखना चाहिए। प्रकृति कभी जल्दबाजी नहीं करती लेकिन फिर भी सब कुछ समय पर सम्पन्न हो जाता है। राम के निर्माण में प्रकृति धैर्यपूर्वक लगी हुई थी। अंततः सकारात्मक परिणाम समक्ष आया। आचार्य पूज्य श्री जवाहर द्वारा प्रदत्त प्रवचन 'अनाथ भगवान' (सनाथ-अनाथ निर्णय) में अनाथीमुनी का जीवन चरित्र पढ़ते हुए राम के मन में भी संकल्प उभरा कि यदि मेरा रोग ठीक हो गया तो मैं दो वर्षों के भीतर-भीतर दीक्षा ले लूँगा। सत्यनिष्ठ इंसान जो कुछ ज्ञान प्राप्त करता है, उसे अपने जीवन में ढालने का पुरुषार्थ करता है, जबकि साधारण इंसान ज्ञान को मात्र मस्तिष्क की खुराक बनाता है, आचरण का ईंधन नहीं।

संकल्प की शक्ति अमाप होती है। संसार में ऐसा कौन-सा कार्य है जो संकल्प से सिद्ध नहीं होता। सफलताएँ संकल्पशील व्यक्तियों के चरणों में अटखेलियाँ करती है। राम का संकल्प परिणाम रंग लाया एवं अनेक औषधियों को अंगूठा दिखा चुका रोग संकल्प मात्र से उपशांत हो गया।

भूल जीवन की सबसे बड़ी शिक्षिकाएँ हैं। भूल से प्राप्त होने वाली एक बार की असफलता मनुष्य को अनुभव की जिस गहराई

तक पहुँचा देती है, सैंकड़ों बार की सफलताओं की खुशियाँ कभी उस गहराई तक नहीं पहुँचा सकती। महापुरुषत्व किसी माँ की कुक्षि से जन्म नहीं लेता, महापुरुषत्व जीवन के दुर्लभ अनुभवों की पैदाइश हुआ करता है। महापुरुषों के महापुरुषत्व की भूमिका का अध्ययन करें तो वह भूलों एवं असफलताओं से भरा मिलेगा। जीवन के प्रारम्भकाल की भूलें बचपन में लगने वाले उन टीकों के समान है जो जीवनभर के लिए उस प्रकार की भूल या रोग से प्रतिरोधी शक्ति का निर्माण कर देती है। दो वर्ष बीत गये आजकल पर टालते हुए और दीक्षा नहीं हुई। जैसे ही दो वर्ष की संकल्प सीमा पूर्ण हुई पुनः चर्म रोग भयावह रूप लेकर उभरा। प्रकृति मानो किसी देवी की तरह प्रतिबोध देने को संकल्पित थी। जैसे ही रोग ने भयावह रूप लिया कि राम को अपनी भूल का स्मरण हो गया कि मैंने संकल्प सीमा के भीतर दीक्षा नहीं ली। अब आपका मन दीक्षा हेतु तत्पर हो गया।

आचार्य श्री नानेश का चातुर्मास जयपुर में था। समझ की परिवक्कता के बाद पहली बार राम ने आचार्य श्री नानेश के दर्शन करने का सौभाग्य जयपुर में प्राप्त किया एवं यहीं भवबंधन से मुक्ति का मूल सम्यक्त्व रत्न गुरु के श्रीमुख से स्वीकार किया। संयम की भावनाओं को एक नया वेग मिला। यहाँ से आसाम जाकर पुनः मुमुक्षु राम गुरुचरणों में उपस्थिति हुए एवं ज्ञानार्जन करने लगे।

गृहस्थ जीवन एवं मुनि जीवन के बीच का पथ है वैराग्य। वैराग्यकाल कुछ क्षणों से लेकर अनेक वर्षों तक हो सकता है। यह समय जीवन के रुपान्तरण का है, विषयों की ओर लपकती इन्द्रिय अश्वों को ज्ञान दिशादर्शक थपथपाहट से आत्मशोध के मार्ग पर मोड़ देने की वेला है। संयम के प्रासाद की मजबूत नींव का निर्माण इसी समय में हुआ करता है। गृहस्थ भाव एवं संयम भाव की सुखदता की रस्साकसी में कभी एक ओर तो कभी दूसरी ओर झुकते मन को, शांत

एकांत क्षणों में उपस्थिति होकर, सभी प्रकार के प्रलोभनों एवं दबावों से मुक्त होकर मानव जीवन के वास्तविक विराट उद्देश्य की दिव्यज्योति पर अपलक नेत्र टिकाए हुए, सर्वज्ञों का निःस्वार्थ उपदेश, प्रतीयमान एवं वास्तविक सुख का भेद, अल्पकालिक सुखाभास एवं शाश्वत स्थायी सत्यसुख का फर्क, दूसरों पर आधारित अतः डोलायमान सुख एवं स्वयं पर आधारित अतः सुनिश्चित सुख का अन्तर इत्यादि विषयों पर गहन चिन्तन, मनन एवं मंथन करके संयम की अनिवर्चनीय सुखानुभूति पर स्थिर करके संयम स्वीकार के मार्ग एवं संयम पथ पर आने वाले कष्टों एवं बाधाओं का सामना करने के लिए अपनी समग्र आत्मशक्तियों को घनीभूत करने का समय होता है- वैराग्यकाल। मुमुक्षु राम ने वैराग्यकाल से ही स्वयं को साधना प्रारम्भ कर दिया। भोजन में अपने प्रियतम आलु का आपने त्याग कर दिया। एक स्थान पर कुछ श्रावकों ने परीक्षा लेने के लिए आपको थली प्रदेश में धूप से तपते रेतीले धोरों पर खड़े होने को कहा। मुमुक्षु राम बिना कुछ विचारे गर्म बालु पर जाकर खड़े हो गये एवं तब तक खड़े रहे जब तक परीक्षा करने वाले श्रावकों ने पुनः बुलाया नहीं। इन्द्रिय विजय ही संयमी सुख का केन्द्र बिन्दु है। इन्द्रियों में आसक्त व्यक्ति कदापि सच्चे आत्मसुख का अनुभव नहीं कर सकता।

माघ शुक्ला द्वादशी, संवत् 2031 को मुमुक्षुओं की दीक्षा होने वाली थी। कुछ ही दिन बचे थे। मुमुक्षु राम के भीतर आत्मध्वनी उभरी कि तुम्हें भी इसी तिथि को दीक्षा लेना है। फिर क्या था आपने जगह-जगह पत्र, तार द्वारा समाचार दे दिये कि मेरी दीक्षा इस तिथि की होनी निश्चित है। पहली गाड़ी से शीघ्र पहुँचे। हालाँकि अभी तक आपके पारिवारिकजनों ने आपको दीक्षा की अनुमति नहीं दी थी, लेकिन आप संकल्प के धनी हैं। आपका आत्मविश्वास बड़ा प्रबल है। पूज्य आचार्य श्री जवाहर ने फरमाया है कि हमारी अनेक भूलों में से

एक बहुत बड़ी भूल यह है कि हम अपनी अन्तरात्मा की आवाज पर ध्यान नहीं देते हैं। जिन साधकों ने अपनी अन्तर्ध्वनि को सुनने का अभ्यास किया है, जो अपने भीतर की आवाज को पहचानते हैं, उनका आत्मविश्वास बड़ा सशक्त एवं प्रभावी होता है। मुमुक्षु राम का संकल्प रंग लाया एवं पारिवारिकजन भी बहुत कशमकश के बाद अन्ततः राजी हुए। जन्मस्थली देशनोक आज दीक्षास्थली में परिणत हो गई।

महासाधक आचार्य श्री नानेश से दीक्षा एवं संयम की शिक्षा पाकर गुरु सेवा एवं गुरु के चित्त को प्रसन्न रखना मुनिराज का उद्देश्य बन गया। अध्ययनादि कार्य भी चलता रहा। अपनी पैनी सूझबूझ एवं कार्य कौशल से थोड़े ही दिनों में मुनि राम गुरु नाना के हृदय में बस गये एवं तीन-चार वर्ष की स्वल्प दीक्षा पर्याय होने पर भी गुरु नाना ने संघीय व्यवस्थाओं सम्बंधी अन्तरंग कार्य मुनि राम को सौंप दिये।

मुनि राम निःस्पृह एवं फक्कड़ संत थे। जीवन स्पष्ट एवं खुली किताब जैसा। जैसा भीतर वैसा बाहर, दिखावे एवं प्रदर्शन से दूर, प्रशंसा की घुड़-दौड़ में आप कभी शामिल नहीं हुए। नाम की चाह के बिना काम को सही तरीके से पूर्ण करना ही आपका ध्येय था। बहुत खेद का विषय है कि आज सर्वस्व त्यागी मुनियों को भी प्रशंसा एवं यश की अतृप्त लालसा ने अपने राक्षसी शिकंजे में दबोच लिया है। जो गुण साधना के विकास के प्रतीक हैं या परिणाम हैं या कर्मनिर्जरा के कारण हैं, यश एवं कीर्ति ने उन सबको अपना पेट बढ़ाने के लिए अपना भोजन बना लिया है। विशिष्ट, विद्वता, कठिन तपस्या, कठोर क्रिया, उग्रविहार, मधुर गायन, प्रेरक प्रवचन, शिष्य समुदाय की बड़ी संख्या, धर्म प्रेरणा कौशल इत्यादि जिनका उपयोग राग-द्वेष को नष्ट करने में, समत्व को विकसित करने में, जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर सिद्धत्व प्राप्त करने में होना चाहिए किन्तु जब हमारे कान स्तुति एवं प्रशंसा के लोलुप बन जाते हैं तो साधक मोक्ष

को पीठ दिखाकर प्रशंसात्मक तुच्छ शब्द पाने हेतु ही इन गुणों का उपयोग करने लगता है। मुनि राम का जीवन कुछ अलग ही किस्म की निःस्पृहता लिए हुए था। आपने नाम एवं यश को कभी सन्मुख नहीं रखा एवं आत्मगुणों की अभिवृद्धि करते हुए निरन्तर गुरु एवं शासन की सेवा में स्वयं को लगाए रखा। अहमदाबाद चातुर्मास में आपने मासखमण (एक महीने तक आहार त्याग करना) का तप किया। शासन संबंधी अन्तरंग कार्य करते हुए भी अन्य आगमों के अध्ययन में तत्पर रहते।

व्यवस्था संचालन एवं अध्ययन में दो गुण परस्पर एक-दूसरे को बाधित करते हैं। व्यवस्था में लगा मन अध्ययन की ओर रुचिशील नहीं बन पाता। किसी भी विषय में कुशलता इस विषय को दिये गये दिनचर्या के एक निश्चित कालखंड से ही प्राप्त नहीं हो जाती। कुशलता के लिए एक भीतरी दृष्टि भी अपेक्षित रहती है जो चौबीसों घंटे सक्रिय रहती है एवं उस विषय में पारंगत बनने हेतु किसी भी कार्य में प्रवृत्त करते व्यक्ति के मन में कुछ अमूल्य सुझाव एवं विकास के बिन्दुओं की तरंग पैदा करके उसे उस विषय में पारंगत बना देती है। व्यवस्था की दृष्टि जहाँ समुदायनिष्ठ होती है, वही अध्ययन की दृष्टि व्यक्तिनिष्ठ होती है। अतः एक साथ दोनों दिशाओं में भीतरी दृष्टि रहना सद्दुष्कर है। मुनिश्री उन विरल व्यक्तियों में से एक थे जिनकी दृष्टि उभयमुखी थी। अतः व्यवस्था संबंधी आपके अनुभव एवं आगमज्ञान की गहराई साथ-साथ विकसित होती गई।

शोध मुनिश्रीजी की नैसर्गिक रुचि रही है, अंधानुकरण आपके स्वभाव में नहीं है। सत्य के प्रति तीव्र अभिरुचि, प्रज्ञा की तीक्ष्णता, उत्तम विश्लेषण क्षमता एवं पूर्वाग्रहमुक्त मौलिक दृष्टिकोण, इन चारों का सम्यक् सुयोग मिलने पर शोधवृत्ति आविर्भूत होती है। मुनिश्री में ये चारों ही बातें उच्च स्तरीय होने से आपका मन नवीन तत्त्वों के

अनुसंधान में निरत रहता। गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र एवं मालवा के क्षेत्र में आचार्य श्री नानेश के साथ विचरण करते हुए आप आचार्यश्री के साथ राजस्थान पधारे। केकड़ी के स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक विद्वान् लालचंदजी नाहटा 'तरुण' ने विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों आदि को एक विशाल प्रश्नावली भेजी, जिसके सम्पूर्ण उत्तर आचार्यश्री के निर्देशानुसार मुनिश्री ने तैयार किए एवं वे उत्तर उन्हें भेजे गये। उन उत्तरों से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने लिखा-

“आपके वहाँ विराजित जैन शासन सम्राट, आचार्य धर्म चक्रवर्ती, हुक्मवंश भास्कर, प्रतिपल वंदनीय, आगम तत्त्व महोदधि, महामहिम प्रातः स्मरणीय, परम पूज्य गुरुदेव श्री मज्जैनाचार्य श्री नानालालजी म. सा., परमागम रहस्यज्ञाता, युवाचार्य कल्प, विद्वानरत्न श्री राममुनिजी म. सा. आदि ठाणा के परम पवित्र चरणारविन्दों में नाहटा परिवार केकड़ी की अत्यन्त भक्ति बहुमानपूर्वक मत्थएण वंदना अर्जकर सुखशांति पूछावे”

“पूज्य आचार्य भगवन् एवं परमागम रहस्यज्ञाता श्री राममुनिजी म.सा. द्वारा आगमिक जिज्ञासाओं के समाधानों को इन दिनों गहराई से देखा। देखकर मैं चमत्कृत हो गया। कुछ समाधान तो प्रचलित धारणाओं से हटकर भी इतने युक्तियुक्त और प्रमाण पुरस्पर हैं कि देखकर स्थानीय विद्वान् भी दंग रह गये हैं। पूज्य गुरुदेव को कितना परिश्रम करना पड़ा होगा, इसकी कल्पना ही दुष्कर है तथापि केवल मात्र परिश्रम ही काफी नहीं है उसके साथ-साथ तीव्र मेधा शक्ति, अवधारणा शक्ति, स्मरणा शक्ति एवं स्वयं का तलस्पर्शी अध्ययन भी आवश्यक है। इन सबकी आपके यहाँ एक साथ उपस्थिति समस्त विश्व के लिए गौरव का विषय है।”

इसमें उन्होंने मुनिश्री को परमागम रहस्यज्ञाता कहकर संबोधित



किया। मुनि श्री राम आचार्य श्री नानेश के अन्तेवासी संत थे। दीक्षा के पश्चात् वे निरन्तर सभी चातुर्मासों में आचार्यश्री के साथ छाया की तरह रहे। यह निकटता उतना महत्त्व नहीं रखती जितना भाव समीपता का महत्त्व है। मुनिश्री ने विनयाराधनापूर्वक आचार्यश्री के भावों को हृदयस्थ कर लिया था। गुरु के भावों को समझकर तदनुसार प्रवृत्ति करने वाला शिष्य निरन्तर विकास करता चला जाता है। गुरु के भावों के अनुसार वही चल सकता है जिसकी अपनी कोई इच्छा ना हो। अपनी इच्छाओं को मन में रखकर ऊपर से गुरुआज्ञा की आराधना करने की कोशिश श्रेष्ठ परिणाम नहीं देती। किसी न किसी मोड़ पर उसकी इच्छाएँ एवं गुरु की भावनाओं में टकराहट हो जाती है। महत्त्व पाने की इच्छा भी गुरु की भावनाओं की आराधना के पथ का दूसरा अवरोध है। स्वयं की महत्त्व पाने की इच्छा वाला तब तक आज्ञाराधना करेगा जब तक आज्ञाराधना उसके महत्त्व पाने की इच्छा रूपी अग्नि में ईंधन का काम करती है, वैसे ही आज्ञाराधना उसके महत्त्व अभिवृद्धि की बजाय हास का कारण बनने लगेगी, वह आज्ञाराधना से विमुख हो जायेगा। मुनि श्री राम ने अपनी इच्छाओं को गुरुचरणों में समर्पित कर दिया था। महत्त्व पाने की इच्छा तो उनमें स्वभाव से ही नहीं थी। अतः वे गुरु नाना की भाव समीपता में निवास करते थे।

‘गुरु-शिष्य का संबंध’ यह संबंध बहुल संसार में सर्वोच्च कोटि का संबंध है। पिता-पुत्र का संबंध, पति-पत्नी का संबंध, भाई-भाई का संबंध, स्वामी-सेवक का संबंध, माँ एवं संतान का संबंध- इनमें से कोई भी संबंध, गुरु-शिष्य के महानतम् संबंध की तुलना में खड़ा नहीं रह सकता। शेष सभी संबंध पदार्थों की साता, शारीरिक सुख, मानसिक आह्लाद-वात्सल्य या प्रेम से पैदा होने वाला वह आनन्द देते हैं जो अल्पकालिक, पराधीन, परिवर्तनशील, अस्थायी, स्वार्थपूर्ण, विनाशवान एवं दुःख मिश्रित होता है, लेकिन गुरु-शिष्य के संबंध से वह अपूर्व

आत्मिक सुख पैदा होता है जो स्थायी, शाश्वत, स्वाधीन, अपरिवर्तनशील, स्थाई, स्वार्थविहीन, अविनश्वर एवं एकांत सुख-स्वरूप होता है। गुरु शिष्य के सम्बन्ध में न खून का रिश्ता होता है, न प्रेम व अनुराग का आकर्षण, न समाज के माने गये मापदंडों की बाध्यता, न वित्त के आदान-प्रदान का संप्रभाव। वह सम्बन्ध संयम की डोर से जुड़ा हुआ एक ऐसा रिश्ता है जो संस्कार के कूप से सींचकर शिष्य को मुक्ति के सुखमय शिखर पर स्थापित कर देता है। गुरु नाना से शिष्य मुनि राम का संबंध भी ऐसा ही निराला संबंध था। कभी तो ऐसा होता कि किसी प्रयोजन से गुरु नाना मन में सोचते कि मुनि राम को बुलाऊँ और मुनि राम को लगता कि गुरुदेव बुला रहे हैं। समीप उपस्थित होकर पूछते-गुरुदेव, आपने आवाज दी।’ गुरुदेव फरमाते मन में विचार किया था। गुरु-शिष्य का यह संबंध गुरु के प्रति अन्तरंग निःस्वार्थ समर्पण से निर्मित होता है, भक्ति गीतों एवं प्रशंसा के बोलों से नहीं।

मुनि राम की साधना में पर्याप्त परिपक्वता आ गई थी। आगमों के प्रति अगाध श्रद्धा एवं आगमानुसार शुद्धाचार पालन की दृढ़भावना ने उनके भीतर संयम का आनंद स्रोत अजस्र प्रवाहित हो रहा था। लाग-लपेट से दूर, स्पष्ट एवं पारदर्शी जीवनशैली से एक अद्भुत सहजता का नांद गूँजता था। निष्पक्ष चित्तवृत्ति ने उनमें सत्य को परखने की एक भव्य कला को विकसित कर दिया था। शास्त्र व्यवस्था में अनवरत लगा हुआ मूक पुरुषार्थ से तद्विषयक कर्मजा बुद्धि उत्पन्न हो गयी। औत्पत्तिकी बुद्धि के वे प्रारम्भ से ही धनी थे। गुरु की सेवा ने वैनयिकी बुद्धि प्रकट कर दी एवं बढ़ते दीक्षा पर्याय में परिणायिकी बुद्धि भी निखर रही थी। आगमों में बताई गई चारों प्रकार की बुद्धियों से आप सुशोभित हो गए। आगमों का ज्ञान गहराईयों को छूने लगा। क्रिया की कठोरता तो आपको मानो दीक्षा घूँटी में जन्मजात मिली थी।

आचार्य श्री नानालालजी म.सा. इस युग के महानतम् साधकों में

से एक थे। श्रेष्ठ साधना चित्त को निर्मल दर्पण के समान बना देती है, जिसमें सत्य प्रतिबिम्बित हुए बिना नहीं रहता। उनकी दृष्टि अन्तःप्रेक्षि की दृष्टि थी। आचार्यश्री जैसे-जैसे वय के पड़ावों को पार करते गये, चतुर्विध संघ का मानस भविष्य का विचार करने लगा। कयासें लगाना इंसान की एक आदत-सी है। विषय में पारंगतता हो या नहीं, मनुष्य अपनी बुद्धि तो दौड़ा ही देता है। 'अमुक संत का लोगों पर बड़ा प्रभाव है' 'अमुक संत की प्रवचन कला बहुत शानदार है' 'अमुक संत को अमुक क्षेत्र के सभी लोग चाहते हैं' 'अमुक संत पर इतनी साधियों की श्रद्धा है' 'अमुक संत ने विशिष्ट प्रभावना की है' 'अमुक बड़े संत का पक्ष अमुक संत को ऊँचा उठाने का है'- इत्यादि चर्चाएँ मन मिलते लोगों में परस्पर दबे स्वर से होने लगी।

संघ की बागडोर किसके हाथों में सौंपना, यह एकांगतः आचार्य के अधिकार एवं निर्णय का विषय है। अन्य किसी को इस विषय में सोचने की न तो आवश्यक है और न कुछ लाभ ही। फिर भी आदत से लाचार इंसान कुछ न कुछ सोचने हेतु मचल ही जाता है।

देखने के कई कोण होते हैं। हर व्यक्ति का एक अपना दृष्टिकोण होता है। आचार्य की दृष्टि कुछ निरालापन लिए होती है। दृष्टि में एक सर्वांगीणता एवं परिपूर्णता होने के साथ ही किस गुण का कितना अधिक महत्त्व है एवं किसका कितना कम, इसका सम्यग् निर्धारण उनके विमल हृदय में स्पष्ट झलकता है।

अनेक छोटी-मोटी अल्प महत्त्व वाली व अपरिपक्व कलाओं की भीड़ के बजाय एक विशिष्ट गुण का पूर्ण एवं श्रेष्ठ विकास व्यक्तित्व को अमाप ऊँचाईयों तक पहुँच देता है। संघ संचालन में कौन से गुण परमावश्यक है एवं किन गुणों की आवश्यकता दूसरे, तीसरे या चौथे नम्बर पर है इसका सही समाकलन करने वाला ही आचार्य

पद के योग्य व्यक्ति को पहचान सकता है। इतिहास साक्षी है कि अनेक चौदह पूर्व के ज्ञाता मुनिराजों, घोर तपस्वी मुनियों, कठोर क्रियाधारी श्रमणों, विशिष्ट लब्धि सम्पन्न साधुओं, प्रचलन कुशल संयतों, परिवादियों को क्षणों में ही निरुत्तर करने में समर्थ साधकों के होने पर भी भगवान महावीर के तीसरे पाट पर विराजमान आचार्य प्रभव स्वामी ने उनमें से किन्हीं को आचार्य पद के योग्य नहीं समझा एवं यज्ञशाला में रहे युवा ब्राह्मण शय्यंभव को प्रतिबोधित करके दीक्षा देकर आचार्य पद पर स्थापित किया था। गहन चिंतन, मनन, अनुसंधान एवं परीक्षणों के उपरांत आचार्य श्री नानेश की पारखी निगाहें मुनि राम पर स्थिर हो गई। चित्तौड़गढ़ में श्रीसंघ के समक्ष आपने चातुर्मासिक विनती श्रवण इत्यादि की जिम्मेदारी मुनि राम को सौंपते हुए उन्हें 'मुनिप्रवर' विशेषण से अलंकृत किया। मुनिश्री को स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि उन पर इस तरह का भार आ पड़ेगा। आपने गुरुवर को अनेकशः इस भार से मुक्त करने का निवेदन किया, पर गुरुदेव को यह उत्तर देकर शांत कर दिया कि तुम जो काम अभी कर ही रहे हो, वही करना है फिर क्यों विचार करना आदि।

जिम्मेदारी किसी भी व्यक्ति के विकास का अद्वितीय साधन है। सैकड़ों प्रेरणाओं एवं हजारों पुस्तकों से भी व्यक्ति उपलब्ध नहीं कर पाता, वह विकास जिम्मेदारी आ जाने पर मस्तिष्क से स्वतः प्रकट होने लगता है। जिम्मेदारी का अर्थ मात्र कार्य का जिम्मा अपने ऊपर होना ही नहीं है। यह तो बहुत ही संकुचित अर्थ है। जिम्मेदारी का अर्थ कार्य में रही भूलों, त्रुटियों, खामियों एवं कमियों का जिम्मा अपने सिर पर स्वीकार करना। जो लोग कार्य में रही कमियों को दूसरों के सिर पर डालने में एवं सिद्ध करने में ही अपनी वीरता एवं कौशल मानते हैं, वे किसी बड़ी जिम्मेदारी को सौंपे जाने के योग्य नहीं हैं। जो कार्य का श्रेय दूसरों को देते हैं एवं गलतियों के लिये स्वयं को जिम्मेदार समझते

हैं वे ही व्यक्ति किसी महत्त्वपूर्ण दायित्व को दिये जाने के योग्य पात्र होते हैं एवं दायित्व वहन में समर्थ बन जाते हैं। मुनि-प्रवर अपने गुणों के निरन्तर विकास में पहले से ही पुरुषार्थशील थे ही, जिम्मेदारी ने उस गति को और तीव्र कर दिया।

महाराजा गंगासिंह जैसे वीर पुरुषों द्वारा शासित, कलाकृतिपूर्ण विशाल हवेलियों से सुशोभित, ऐतिहासिक महत्व की प्राचीन नगरी बीकानेर, जहाँ 16 फरवरी सन् 1992 को 21 दीक्षाओं का भव्य महोत्सव होने वाला था। बीकानेर में श्वेताम्बर जैन समाज के सहस्राधिक घर हैं। ऐसे दीक्षा प्रसंग पर अनेक मुनिराजों एवं साध्वीवर्याओं का समागमन होने से बीकानेर की नगरी उड़ते हुए श्वेत हंसों से व्याप्त नीलगगन के समान सौन्दर्यपूर्ण लगने लगी। सहज ही अनेक मुनि-आर्याओं की सुमुपस्थिति ने आचार्यश्री की सुदीर्घकाल से चली आ रही चिंतनधारा को घनीभूत कर दिया। संघ के भविष्य का निर्णय सम्पूर्ण संघ के सामने अभिव्यक्त कर देने का यह सर्वोत्तम अवसर था। वृद्धावस्था एवं रोग के प्रभाव से आचार्यश्री का स्वास्थ्य प्रतिकूल था तथापि इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करना आवश्यक जानकर आचार्यश्री ने आवश्यक विश्राम को भी गौण किया। श्रद्धेय इन्द्रचंद्रजी म.सा. एवं पाँच मुनिराजों के समक्ष आचार्यश्री ने अपनी भावना को व्यक्त किया। मुनि-प्रवर श्री रामलालजी म.सा. का जीवन इस कदर स्पष्ट एवं स्वच्छ था कि इस निर्णय में कोई आपत्ति का प्रश्न नहीं था। आचार्यश्री ने उन्हीं में से एक मुनिराज को प्रारूप बनाने हेतु कहा। प्रारूप प्राप्त होने पर आचार्यश्री ने इसमें आवश्यक संशोधन किया। तदनन्तर युवाचार्य पद प्रदान संबंधी इस प्रारूप पर आचार्य-प्रवर ने अपने स्वर्णिम हस्ताक्षर अंकित कर दिये। श्रद्धेय इन्द्रचंद्रजी म.सा. एवं पाँचों मुनियों ने भी इस प्रारूप पर दस्तखत कर दिये।

संस्कारों की विडम्बना कहें, शिक्षा पद्धति की कमी कहें, अनुशासन शैली की खामी कहें, कर्मों का उदय भाव कहें या मूलतः आत्मपुरुषार्थ में कमी कहें कि जैसे-जैसे मुनि की ज्ञान पर्याय एवं प्रभाव वृद्धिगत होता है, अभिमान भी साथ-साथ वृद्धिगत होता है। विरले साधक ही ऐसे होते हैं जिनमें जैसे-जैसे गुण बढ़े वैसे-वैसे नम्रता भी बढ़ती है। अभिमान, पद-प्रतिष्ठा, विशेषण इत्यादि अनेक आकांक्षाओं को पैदा करता है। युवाचार्य पद का प्रारूप बनाने को दिया गया हो तो उसी नाम की अन्तरंग भूख से मुनियों के आगे स्थविर प्रमुख, श्रमण-प्रवर, सन्त-प्रवर इत्यादि अनेक विशेषण भी उन्होंने लगा दिए। आचार्यश्री ने उन्हें देखा तो विचार हुआ किन्तु उसमें कुछ भी कहना उपयुक्त नहीं समझा। उस प्रारूप के अंत में आचार्यश्री ने इस आशय का एक वाक्य लिखा कि सभी व्यवस्थाओं में आगमिक धरातल पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन, परिवर्द्धन आदि करने में मैं व भावी शासनायक स्वतंत्र हैं। प्रारूप पर आचार्यश्री, श्रद्धेय इन्द्रचंद्रजी म.सा. एवं पाँचों मुनियों ने हस्ताक्षर कर दिये। दिनांक 02.03.1992 को प्रातः सूर्योदय के कुछ समय बाद सभी साधु-साध्वियों को बुलाकर श्रावक-श्राविकाओं से खचाखच भरे हॉल में आचार्यश्री द्वारा भविष्य के संघ अनुशासन, संघ संचालक, संघ शिरोमणि की घोषणा कर दी गई। सभा जय-जयकार कर उठी। साधु-साध्वियों ने अपनी-अपनी श्रद्धासिक्त, भावाभिव्यक्ति दी। आचार्यदेव ने भी संघ को संदेश दिया कि जैसी आपकी मुझ पर आस्था है, उसी प्रकार युवाचार्य श्री रामलालजी म.सा. पर आस्था रखें। इन्हें मेरे जैसा ही समझें एवं इनकी आज्ञा को मेरी आज्ञा मानकर चलें, युवाचार्यश्री ने भी ये भाव फरमाए कि 'आचार्यश्री ने मुझ जैसे अल्पज्ञ साधक को यह भार दिया है। मैं आज भी स्वयं को इसके योग्य नहीं समझ रहा हूँ।' आचार्यश्री ने फरमाया कि मुझे चतुर्विध संघ की गोद में सौंपा जा रहा है। इससे

थोड़ा मेरा मन आश्वस्त हुआ है। आचार्यश्री का वरदहस्त (आशीष) प्रारम्भ से ही मेरे ऊपर बना रहा है। मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को तराशकर आज कुछ कहने लायक बनाया। आचार्यश्री के अनन्य उपकार का वर्णन नहीं किया जा सकता। आचार्यश्री की छत्रछाया एवं चतुर्विध संघ की गोद में मैं अपने आपको हल्का महसूस कर रहा हूँ।

जय-जयकार के नारों से सभा पूर्ण हुई। बीकानेर संघ एवं उपस्थित साध्वीवर्याओं के अत्याग्रह से आचार्य प्रवर ने युवाचार्य चादर प्रदान का ऐतिहासिक कार्य प्रसंग हेतु बीकानेर संघ को स्वीकृति प्रदान की एवं दिनांक 07.03.1992 फाल्गुन शुक्ला तृतीया, संवत् 2048 को जूनागढ़ के विशाल राजगढ़ प्रांगण में हजारों की जनभेदिनी के बीच नंदीसूत्र के स्वाध्याय के पश्चात् चादर को पहले सभी साध्वियों ने स्पर्श किया फिर सभी संतों ने हाथ लगाया तदनन्तर आचार्य श्री नानेश ने स्वयं चादर धारण की तत्पश्चात् युवाचार्य श्री राम को वही चादर ओढ़ाकर उन्हें भगवान महावीर के 82वें एवं हुक्मसंघ के नवम् पट्टधर के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया। पाण्डाल में उपस्थित आबाल-वृद्ध के चेहरों पर प्रसन्नता छा गई।

महापुरुषों का जीवन पुष्प कठिन संकटों के कंटकों के बीच ही खिला करता है। कष्ट इन्सान के भीतर छिपी शक्तियों को खींचकर प्रकट कर देते हैं। समस्याओं की वनवीथियों से गुजरता हुआ वीर पुरुष जिन अमूल्य अनुभूतियों को बटोरता है, वे सुविधाओं के उपवनों में नहीं मिला करतीं। मनुष्य के विश्राम के लिए आवश्यक है कि वह हृदय और मस्तिष्क पर दबाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में जीएँ। तभी उसका वास्तविक दिव्य स्वरूप निखार पाता है। प्रकृति का जितना उपकार माना जाये उतना कम है कि वह भूल नहीं करती एवं जिस व्यक्ति में महापुरुषत्व के मौलिक गुण देख लेती है उस पर संकटों एवं आपत्तियों के पर्वत गिराने लगती है। लाखों नमस्कार है उस

प्रकृति को जिसने इस तरीके से संसार में अनेक महापुरुषों का निर्माण किया।

अब प्रकृति युवाचार्य श्री राम के भीतर श्रेष्ठ गुणों के अस्तित्व को देखकर उनके निर्माण में सन्नद्ध हो गई। अभिमान पर चोट पड़ने से कोई व्यक्ति तो धर्म के सन्मुख हो जाता है तथा कोई धर्म से विमुख हो जाता है। गुणियों की निन्दा करना, इसी चोट खाए अभिमान एवं ईर्ष्या की बाह्य परिणति है। लम्बे समय से पद पाने की परिकल्पनाओं एवं कल्पनाओं से भरा मन, स्वच्छंदताओं को प्राप्त करने हेतु लालायित मन युवाचार्य राम को पद दिये जाने पर अपनी सारी कल्पनाओं पर पानी फिरते देख एक बार के लिए भीतर तक आहत हो गया। उस वक्त जरूरत इस बोध के प्रकटीकरण की थी कि मैंने इतने समय तक जो यशोवांछा रखी, वह गलत थी। मगर बोध उसी के भीतर प्रकट होता है, जिसके अन्तःकरण की गहराई में संवेग भाव-मोक्ष की तीव्र अभिलाषा लहराती हो, जिन्होंने यशकीर्ति को ही अपने जीवन का प्राण समझ लिया है एवं उसी को पाने हेतु बारंबार अपने मन में कई कल्पनाएँ संजोई हैं। वहाँ बोध नहीं विरोध प्रकट होता है और हुआ भी वही। युवाचार्य श्री राम को कैसे परेशान किया जाए, कैसे जनसाधारण से उनके प्रति श्रद्धा को हटाया जाये, उसी के तौर-तरीके अपनाये जाने लगे। विरोध जन्म देता है दोष दृष्टि को, माया को, ऐसे ही कितनेक दुर्गुणों को।

आत्मकल्याण के जिस महान् उद्देश्य से संयम स्वीकार किया था, उसे किसी भूलभुलैया में उलझाकर कुछ मुनि एवं अनेक सहयोगी चतुर्विध संघ के कुछ सदस्यों ने भीतर ही भीतर विष घोलने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। 'चोर-चोर मौसेरे भाई' की उक्ति के अनुसार अतीत में किसी भी कारण से असंतुष्ट लोगों को मौका मिल गया एवं उन्होंने इस दुष्चक्र में शामिल होकर अपने कर्मबंध को भरपूर तीव्रता दी।

निन्दा करके जनता को आकृष्ट करने का भी एक अपना विज्ञान है। जनता के श्रद्धा के केन्द्र की तारीफ करो ताकि लोग अच्छा समझने लगे एवं फिर जिसके प्रति द्वेष हो, उसकी निन्दा करो, यही तरीका यहाँ भी अपनाया गया। आचार्य श्री नानेश की प्रशंसा एवं युवाचार्य श्री राम की निन्दा। काश वे सज्जन आचार्य श्री नानेश की इस आज्ञा का पालन करते कि जैसा मुझे मानते हो वैसा ही युवाचार्यश्री को मानें। भीतरी प्रसन्नता बाहरी वातावरण की मुखातिब नहीं होती। उसके लिए मात्र अपनी आध्यात्मनिष्ठ दृष्टि, इन्द्रिय विजय एवं कषाय विजय का आत्मलक्ष्य अपेक्षित है। जितना-जितना प्रयत्न जनता के मन से युवाचार्यश्रीजी की श्रद्धा उतारने का हुआ, युवाचार्यश्री की साधना उतनी-उतनी निखरती गई। एक व्यक्ति को अपना विरोध करते देख भी व्यक्ति का मन चिन्तित एवं चेहरा उदास हो जाता है, लेकिन आचार्य श्री नानेश की पारखी दृष्टि से परखा गया हीरा एक अलग ही चमक लिए था। सारे विरोधों के बीच भी युवाचार्यश्री प्रसन्नचित्त थे। न उन्हें सम्पूर्ण संघ द्वारा की जा रही भक्ति, प्रशंसा एवं स्तुति में कोई खुशी थी, न ही कुछ व्यक्तियों द्वारा किये जा रहे दुष्प्रचार का गम। श्री उत्तराध्ययन सूत्र की गाथा-

**लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।  
समो निंदा, पसंसासु, तहा माणाव माणऔ।।**

लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, निन्दा, प्रशंसा, मान, अपमान में मुनि समान होता है।

इस गाथा के भाव युवाचार्यश्री के जीवन में रम गए थे। वे इस सारे वातावरण में अपनी मस्ती एवं अपनी दृढ़ संयमी गति से सतत् गतिशील थे। संघ को छिन्न-भिन्न करने की दुर्भावना से ग्रस्त मुनियों द्वारा किये जा रहे दुष्कार्यों के सशक्त प्रमाण आचार्यश्री को प्राप्त हो

गये। 'चोर के पैर कच्चे होते हैं' की कहावत के अनुसार इस बात की भनक लगने पर वे भयभीत हुए एवं आलोचनापूर्वक शुद्धीकरण करने के बजाय विराधकता की दिशा में और कदम बढ़ाते हुए उन्हें झुठलाने की असफल कोशिश करने लगे। अपने दुष्प्रयत्नों को असफल होते देख वे भीतर से भयभीत होकर अपने सहयोगियों के साथ पलायन कर गये।

जिन गुरुदेव की वर्षों तक वे भक्ति एवं आराधना करते रहे, जिन गुरु ने उन्हें संसार कर्म से उबारकर संयम उपवन में बिठाया, जिन गुरु ने माँ की तरह सैकड़ों कष्ट सहन करके भी जिन्हें सिखाया, पढ़ाया, बढ़ाया।

जिन गुरु ने शिक्षा का हाथ बढ़ाकर विषयों की आँधी में टिमटिमाते संयम दीप की ज्योति को बचाया।

जिन गुरु ने सर्द रातों में उठकर ठिठुरते शिष्यों को वस्त्र ओढ़ाया, जिन गुरु ने वेदना भरे हृदय से बहते आँसुओं को पौँछकर वेदनामुक्त बनाया।

जिन गुरु ने रुग्णता के समय जिन्हें अपनी गोद में सुलाकर थपथपाया, आज वे ही शिष्य उन्हीं गुरु को अपने तीखे मन और वचन के तीरों से आहत करके ही नहीं रहे बल्कि अपने अपराधों के भय से स्वयं भयभीत बनकर उन गुरु को अक्षम कहकर उपकार का बदला तिरस्कार से चुकाकर गुरु को पीठ दिखाकर चल पड़े। अहो! पंचम आरे का यह दुःषम प्रभाव कि गुरु की महिमा को भी पैरों तले रौंद दिया गया। यही कहा जा सकता है कि प्रभु पार्श्व को कमठ की, गजसुकुमाल मुनि को सोमिल की एवं भगवान महावीर को कुशिष्य गौशालक की आत्मा ने परमपद प्राप्ति में सहयोग प्रदान किया। वैसे ही आचार्यश्री को इनकी आत्मा ने कर्मनिर्जरा में सहयोग प्रदान किया।

अब तो क्या कहना। 'करेला फिर नीम चढ़ा'। उन्मुक्त हो जाने पर उनके दुष्प्रचार के वेग में और गति आ गई। 25 लाख रूपये देकर मार डालने की धमकी भरे गुमनाम पत्र भी वितरित हुए, पर युवाचार्यश्री का रोम भी प्रकम्पित नहीं हुआ। संघ द्वारा पुलिस व्यवस्था करने पर युवाचार्यश्री वे तुरन्त इसका दृढ़ प्रतिकार करते हुए फरमाया कि जब तक पुलिस वालों को हटाया नहीं जायेगा, मैं मेरे तप का पारणा नहीं करूँगा। अततः संघ वालों को विवश होकर पुलिस को हटाना पड़ा। इसी प्रसंग पर युवाचार्यश्री ने आचार्यश्री को पत्र लिखा, जिसकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं-

गुरुदेव, चिन्ता की बात ही क्या है? अहिंसा पर हमें आस्था है। अहिंसक का कोई कर भी क्या सकता है? यदि आयु के दलिक भी पूरे हो गए तो रोक भी कौन सकता है? खंदकमुनि के अनुग्रहवशात् उनके पिता ने 500 सुभटों को उनकी सुरक्षा के लिए रखा, पर समय आने पर कोई सुभट काम नहीं आया।

भूतपूर्व प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी व राजीव गाँधी की सुरक्षा हेतु भारत सरकार ने कमाण्डों फोर्स की व्यवस्था कर रखी थी, परन्तु वक्त काल का जब आया, सारी व्यवस्था धरी रह गई। बल्कि इन्दिरा गाँधी के लिए तो कहा जाता है कि बाड़ ही खेत को खा गई। अतः बालक का विनम्र निवेदन है कि इस विषय को लेकर आप कतई चिन्तित न हों।

असत्य कल्पना से यदि वैसा कुछ हो भी जाता है तो वह मेरे लिए स्वर्णिम क्षण होगा। धर्मसंघ के लिए गौरव का विषय होगा। मेरे रहने नहीं रहने से कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। शासन आबाद है, इसमें अनेक विभूतियाँ हैं। इसलिए चिन्तित होने की कोई बात नहीं (है) रह जाती है।

यह बात उस समय की है, जब युवाचार्यश्री का विचरण मेवाड़-मालवा अँचल में हो रहा था एवं आचार्यश्री नानेश नोखामण्डी (बीकानेर) में विराज रहे थे। सन् 1996 में आचार्यश्री ने युवाचार्य श्री रामलालजी म.सा. को पहली बार स्वतंत्र चातुर्मास हेतु भेजा था, पहले निम्बाहेड़ा चातुर्मास में ही शासन की भव्य प्रभावना हुई तदन्तर जावद, भदेसर, उदयपुर, चित्तौड़, नीमच, खाचरौद आदि में एक के बाद एक दीक्षाएँ देते हुए युवाचार्यश्री चातुर्मासार्थ रतलाम पधारे। रतलाम चातुर्मास में भी धर्म-ध्यान का अद्भुत ठाठ लगा एवं मासखमण की तपस्याएँ हुई। दो मुमुक्षु आत्माओं की दीक्षा हुई। रतलाम से विहार करके युवाचार्यश्री, आचार्यश्री की सेवा में ब्यावर पधारे, अगला चातुर्मास आचार्यश्री की सेवा में उदयपुर हुआ। प्रायः दीक्षा के आस-पास से ही युवाचार्यश्री, आचार्यश्री के स्वास्थ्य के प्रति जागृत रहते थे। जागृत भाव से भक्तिपूर्वक आचार्यश्री की अनुकूलताओं को साधने में तत्पर रहते। पुद्गलों के स्वभाव ने आचार्यश्री के स्वभाव को भी नहीं छोड़ा। शारीरिक शक्ति मंद हो गई। संघीय व्यवस्थाओं को सुचारु रीति से संभालने के साथ ही युवाचार्य-प्रवर, आचार्यश्री की सुश्रुषा में भी अहर्निश तत्पर रहते। सन् 1998 में चातुर्मास के पश्चात् स्वास्थ्य की प्रतिकूलतावश सन् 1999 का चातुर्मास भी उदयपुर ही हुआ। आचार्यश्री का स्वास्थ्य गिरावट की ओर था। युवाचार्यश्री का ध्यान सतत् आचार्यश्री के स्वास्थ्य की ओर बना रहता था। कार्तिक मास की कृष्णा तृतीया को सूर्योदय से पूर्व रात्रिक प्रतिक्रमण से पूर्व युवाचार्यश्री जब नित्य नियम कर रहे थे तब उनके मन में 'तिविहार संथारा - तिविहार संथारा' के शब्द गूँजने लगे। ऐसे प्रसंग पर इस अनुगूँज के भावों का समझना कठिन नहीं था। युवाचार्यश्री, आचार्यश्रीजी के पास पधारे। संलेखना संथारा के विषय में पूछा। आचार्यश्री ने हामी भरी। उस समय तो प्रायश्चित्त सुनाकर श्री दशवैकालिक सूत्र का छज्जीवाणिया पर्यन्त

स्वाध्याय ही सुनाया। प्रातः डॉक्टर ने कहा-ड्रीप चढ़ाई जा सकती है लेकिन स्थिति में ज्यादा सुधार आना कठिन है। आयु ज्ञान के अन्य संकेतों से भी आयुष्य की स्वल्पता ही ज्ञात हो रही थी। ऐसे समय में मुनिवर्ग से विमर्श करके एवं आचार्यश्री की पुनः स्वीकृति प्राप्त कर युवाचार्यश्री ने संधारा करवाने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी। प्रातः दस बजे के आस-पास संधारा करवाया गया जो रात्रि लगभग 10 बजकर 41 मिनट पर सीझ गया। आचार्यश्री की आत्मा उच्च देवलोक हेतु प्रयाण कर गई। रात्रि में उसी समय परमश्रद्धेय श्री रामलालजी म.सा. को उपस्थित मुनियों ने आचार्य पद की चादर धारण कराई।

जब आचार्यश्री के जीवन का नया युग प्रारम्भ हो गया। आचार्य श्री नानेश के प्रति अन्तरंग भक्ति फलस्वरूप एवं उनके सतत् सान्निध्य में रहने से पूज्य श्री रामलालजी म.सा. पूर्णतः निश्चित रहा करते थे। पुत्र भले ही सारा कार्य संभालता हो एवं पिता कितने ही वृद्ध हो किन्तु पिता की उपस्थिति मात्र ही उसके लिए एक संबल हुआ करती है। चातुर्मास पश्चात् उदयपुर शहर से उदयपुर के उपनगरों में विचरण प्रारम्भ हुआ एवं सुन्दरवास में मालवा के एक दम्पति की दीक्षा हुई। उदयपुर से विहार करके आचार्यश्री जोधपुर पधारे, जहाँ पहले श्री आदित्यमुनिजी म.सा. एवं उनकी माता की दीक्षा सादगीपूर्ण तरीके से स्वाध्याय भवन नामक स्थानक में ही सम्पन्न हुई एवं पुनः जोधपुर में भी सात दीक्षाएँ और हुई। फलौदी में भी दीक्षा प्रसंग सम्पन्न करते हुए आचार्यश्री ने पहले चातुर्मास हेतु जयपुर में प्रवेश किया। उस दिन आचार्यश्री के 9 की तपस्या थी। उसी दिन ही एक मुमुक्षु भाई की दीक्षा हुई। जौहरियों के नगर का चातुर्मास पूर्णकर आचार्यश्री सवाईमाधोपुर एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों को स्पर्शते हुए कोटा पधारे, जहाँ दो बहिनों की दीक्षा हुई। वहाँ से ब्यावर होकर बीकानेर क्षेत्र की तीव्र भावनाओं को देखते हुए उसी दिशा में पधारे। नोखामण्डी

में अक्षय तृतीया के प्रसंग पर पाँच दीक्षाएँ एवं अपनी जन्मभूमि देशनोक में एक दीक्षा सम्पन्न कर अगला चातुर्मास गंगाशहर-भीनासर किया।

गंगाशहर-भीनासर दो परस्पर जुड़े कस्बों का एक संयुक्त संघ है। वहाँ की चातुर्मासिक प्रभावना का अलग ही नजारा था। जवाहर विद्यापीठ के विशाल रेतीले मैदान में तीन के छपरे के नीचे जनता खचाखच भरी रहती। वहाँ पर भी लोग नहीं समाए तो संघ को दीवार हटाकर पास के खाली ग्राऊण्ड तक जनता को बिठाना पड़ा। तपस्याओं का अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि व्याख्यान में प्रत्याख्यान कराने की प्रक्रिया में भी लगभग आधा घंटा लग जाता। आचार्य-प्रवर जब गंगाशहर-भीनासर की सरणियों में चरण विन्यास करते तब साधुमार्गी ही नहीं, तेरापंथी बहिनें भी सड़कों पर ही भूमि पर घुटने टेककर वन्दना करते हुए 'बापजी माई तपणो कराओ' का आग्रह करने लगते।

गंगाशहर-भीनासर में पहले भी कई चातुर्मास हुए, लेकिन तेरापंथी समाज में इतनी भक्ति कहीं भी नहीं देखी गई। इसी चातुर्मास में विधिवत् मुमुक्षु शिविर भी प्रारम्भ हुआ जो उसके बाद प्रतिवर्ष लग रहा है। मुमुक्षु शिविर में सम्प्रदाय के अनेक मुमुक्षु भाई-बहिन आचार्यश्री के सान्निध्य में ज्ञान एवं संयम साधना की नई दिशा प्राप्त करते हैं। आश्विन मास में एक बहिन की दीक्षा हुई एवं चातुर्मास के बाद ठीक अगले दिन मार्गशीष कृष्णा एकम को चार भाईयों की एवं सात बहिनों की ग्यारह दीक्षाएँ हुई।

चातुर्मासोपरान्त आचार्यश्री जंगल (मंगल) देश एवं पंजाब की ओर पधारे। श्री गंगानगर में चार दीक्षाएँ हुई। उस समय भारत-पाकिस्तान सीमा पर काफी तनाव था। वह कारगिल युद्ध के आस-पास का समय

था। आचार्यश्री पाकिस्तान की सीमा के अत्यन्त समीप क्षेत्रों में विचरण कर रहे थे। लोगों को भय था किन्तु आचार्यश्री निश्चित थे। अनेक बार सीमा सुरक्षा बल के जवान मिलते, पूछताछ करते एवं संतुष्ट होकर अवरोध उत्पन्न नहीं करते। उधर विचरण करके पुनः बीकानेर पधारने पर चार भाइयों एवं पाँच बहिनों सहित कुल नौ दीक्षाएँ हुई। कुछ ही समय बाद गंगाशहर-भीनासर में एक भाई की दीक्षा और हुई। अगला चातुर्मास सरदारशहर में हुआ। इस चातुर्मास में आचार्यश्री ने 14 की तपस्या की। तपस्या आचार्यश्री को शुरु से ही प्रिय रही है। मुनि अवस्था में भी आपने कई तपस्याएँ की। कभी 108 एकासन, कभी 22 आर्यबिल, कभी चार मास एकान्तर एवं पारणे में बियासना, कभी दो मास एकान्तर एवं 8, 9, 12 आदि की कई थोक तपस्याएँ भी आचार्यश्री ने की। अहमदाबाद चातुर्मास में भी आपने मासखमण का तप भी किया। हुक्म परम्परा के नौ आचार्यों में से मासखमण करने वाले आप एक मात्र आचार्य हैं। युवाचार्य पद ग्रहण के समय भी आपके पाँच की तपस्या थी। चातुर्मासिक प्रवेश एवं भगवान महावीर के निर्वाण के प्रसंग पर भी आचार्यश्री वर्षों से तेला कर रहे हैं। आचार्य पद के बाद भी प्रतिमास कम से कम चार उपवास एवं चार एकासना तो रहते ही हैं। वर्तमान (सन् 2017) में हर शनिवार को उपवास एवं अन्य दिनों में एकासना तो रहता ही है।

सरदारशहर चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री बीकानेर होते हुए अलाय एवं नागौर में दीक्षाएँ देते हुए बड़ीसादड़ी चातुर्मास हेतु पधारे। उसके बीच भोपालसागर में भी दो दीक्षाओं का प्रसंग बना।

आचार्यश्री का चिन्तन संघोन्नति के विषय में सतत् चलता रहता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र में साधु-साध्वी निरन्तर कैसे उन्नति प्राप्त करें एवं संघीय व्यवस्थाएँ भी किस प्रकार से सुदृढ़ रहे। एतदर्थ आपका विचारशील मस्तिष्क नए-नए आयामों के अनुसंधान में प्रवृत्त रहता है।

बड़ीसादड़ी चातुर्मास में आचार्यश्री के उर्वर मस्तिष्क में मीमांसा परिषद की योजना बनी। आपने चर्चनीय विषयों की सूची बना ली। सम्प्रदाय के सभी साधु-साध्वियों की उपस्थिति की अनुकूलता बन पाये। आचार्यश्री को उदयपुर क्षेत्र उपयुक्त लगा एवं उदयपुर संघ को होने वाली दीक्षाओं की आगारों सहित स्वीकृति प्रदान कर दी गई।

उदयपुर में छः भाइयों एवं नौ बहिनों की दीक्षा का भव्य प्रसंग बना। अनेक क्षेत्रों से कठिन विहार करके गुरुआज्ञा की आराधना हेतु पधारे साधु-साध्वियों का विशाल समूह। सम्पूर्ण उदयपुर नगरी मानो धर्ममयी बन गई थी। प्रवचन के समय आचार्यश्री द्वारा प्रस्तुत संघ समर्पणा गीत के संगान के पश्चात् मात्र आचार्यश्री का प्रवचन होता। दोपहर डेढ़ बजे से साढ़े तीन बजे तक मीमांसा परिषद चलती, जिसमें निर्धारित विषयों पर उन्मुक्त चर्चाएँ होती। आचार्यश्री को समय की पाबंदी हमेशा से पसंद है। मीमांसा परिषद के दौरान समय की पाबंदी का अद्भुत दृश्य देखने को मिलता। निर्धारित समय से पाँच मिनट पूर्व तक उदयपुर शहर की पौषधशाला का विशाल हॉल प्रायः खाली रहता एवं पाँच मिनट में सभी अपने स्थान पर उपस्थित हो जाते। मीमांसा परिषद में अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय हुए। उदयपुर से विहार कर फतहनगर में एक दीक्षा सम्पन्न करने पधारे।

चातुर्मास की घोषणा प्रायः फाल्गुनी पूर्णिमा (होली) के बाद ही हुआ करती थी। उस सभा का दृश्य बड़ा ही रोमांचक रहता है। विभिन्न संघ आचार्यश्री के चातुर्मासार्थ अपनी-अपनी विनती प्रस्तुत करते हैं। सबकी विनतियाँ सुनने के पश्चात् जब आचार्यश्री फरमाने लगते हैं तो लोग आचार्यश्री द्वारा फरमाये जाने वाले एक-एक शब्द पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं एवं तदनुसार कल्पना करने लगते हैं कि चातुर्मास यहाँ खुलने वाला है या वहाँ खुलने वाला है। कई लोग तो पूर्व से ही विचार करके आते हैं कि चातुर्मास यहीं खुलने वाला है



किन्तु अनकेशः लोगों की परिकल्पनाएँ गलत सिद्ध होती हैं। पूरी सभा चातुर्मास के क्षेत्र को सुनने हेतु हृदय को थाम कर बैठे रहती है। उदयपुर के सेक्टर-11 में जब चित्तौड़गढ़ चातुर्मास खुला तब ही कुछ अप्रत्याशित ही हुआ। चित्तौड़ वालों को भी इस बात का विश्वास नहीं था कि चातुर्मास हमारे यहाँ खुलेगा। चातुर्मासिक विनती करने वाले चातुर्मास हेतु कितने ही सशस्त कारण प्रस्तुत करें लेकिन वे सारे कारण एवं तर्क गौण होते हैं। चातुर्मास का निर्णय आचार्यश्री के अन्तरात्मा की ध्वनि पर ही निर्भर होता है, जिधर अन्तरात्मा ने गवाही दे दी उधर ही चरण मुड़ जाते हैं।

आचार्यश्री का जीवन प्रयोगधर्मी जीवन है। विभिन्न समयों पर आपने अनेक सफल प्रयोग किये। एक बार जब आचार्यश्री का ब्यावर नगर में प्रवेश होने वाला था, आचार्यश्री ने श्रावकों को संकेत मात्र किया कि स्थानक में पैर रखने के पूर्व तक मार्ग में कोई व्यक्ति नारा न लगाये। सभी चलते हुए मौन धारण करें। आचार्यों का संकेत भी किसी आदेश से कम नहीं होता। यह समझने वाले श्रावक समुदाय ने इस संकेत की अतिसुन्दर आराधना की। जनता मौनपूर्वक चल रही थी। स्थानक में चरणन्यास करते ही जनता जय-जयकार कर उठी। उदयपुर में मीमांसा परिषद के अवसर पर प्रवेश के समय भी गुरुदेव ने ऐसा ही आह्वान किया था एवं संघ ने उसकी सश्रद्धा आराधना की। साधुमार्गी संघ के जन-जन के हृदय में संघ के प्रति रही अनन्य आस्था जब शिराओं में रक्त को फेंकती है तो उसके साथ ही एक वेगवान संदेश पूरे शरीर एवं मस्तिष्क में फैल जाता है कि 'आचार्य की आज्ञाराधना ही हमारा प्रण एवं प्राण भी है'। संघ सदस्यों की इसी अप्रतिम श्रद्धा के बल पर ही श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ का कठिन संघर्षों में भी पर्वतीय ऊँचाईयों की ओर आरोहण गतिशील रहा है।

चित्तौड़गढ़ चातुर्मास खोलने के पूर्व ही आचार्यश्री ने कुछ संकेत दिए थे एवं तदनुसार चित्तौड़ चातुर्मास में आचार्यश्री ने दोपहर बारह बजे से तीन बजे तक गृहस्थ वर्ग से मौन रखा। चारों महीने यह क्रम निरन्तर गतिशील रहा है। इस प्रयोग को समूचे संघ ने श्रद्धा से स्वीकारा। इस चातुर्मास में साध्वियों में 23 मासखमण हुए। चित्तौड़ चातुर्मास के अंतिम दिन आचार्यश्री ने अक्षय तृतीया व दीक्षाओं की आगारों सहित स्वीकृति जलगाँव संघ को दे दी। चित्तौड़ से विहार करके भीलवाड़ा में दो बहिनों की एवं नीमच में एक भाई की दीक्षा सम्पन्न हुई। रतलाम में होली चातुर्मास के प्रसंग पर आचार्यश्री ने इन्दौर एवं अमरावती दो में से किसी एक स्थान पर चातुर्मास होने के भाव व्यक्त हुए अक्षय तृतीया पर निर्णय की बात फरमाई। रतलाम एवं इन्दौर में दीक्षाएँ सम्पन्न करते हुए आपका जलगाँव पधारना हुआ, जहाँ अक्षय तृतीया पारणे एवं पाँच बहिनों की दीक्षाएँ हुई। करीब दस हजार की विशाल जनमेदिनी उस प्रसंग पर उपस्थित थी। अमरावती हेतु चातुर्मास का निश्चय करके आचार्यश्री का पदार्पण परतवाड़ा में दीक्षा देते हुए अमरावती की ओर हुआ। अमरावती चातुर्मास होने से विदर्भवासी बहुत लाभान्वित हुए। चातुर्मास के पश्चात् विदर्भ विचरण करते हुए कारंजा में दीक्षा देते हुए आचार्यश्री खानदेश पधारे, जहाँ पारोला में दीक्षा देकर शहादा में पिता, माता, एक पुत्र व दो पुत्रियों के भरे-पूरे परिवार को संयम पथ पर आरूढ़ किया। धुलिया में दीक्षा देकर एवं खानदेश का विचरण करके आचार्यश्री इन्दौर चातुर्मास हेतु पधारे। इन्दौर में अभय प्रशाल के विशाल इन्डोर स्टेडियम में समय-समय पर प्रवचन होते थे। वहाँ की विशाल प्रवचन सभा का नजारा समवसरण की छटा की कल्पना कराने वाला था। चातुर्मास काल में ही दो दीक्षाएँ देकर भव्य धर्मारामय चातुर्मास पूर्ण करके बदनावर में दीक्षा देकर आचार्य-प्रवर खिरकिया पधारे एवं वहाँ भी दो मुमुक्षु

बहिनों को संयमरत्न प्रदान किया।

अध्ययन एक द्विपक्षीय घटना है, जहाँ दोनों पक्ष प्राणवान होते हैं। श्रुत की धारा का सम्यक् प्रवाह आत्मा से आत्मा की ओर होता है। हजारों पुस्तकें और अनेकों शास्त्रों को छपा देने मात्र से समुदाय ज्ञानवान नहीं बनता है। बल्कि अनेक बार तो यह अनुभव किया जाता है कि जितना-जितना पुस्तक प्रकाशन बढ़ता है उतना-उतना ज्ञान के प्रति रुझान कम होता जाता है। 'पुस्तक में लिखा ही है, जब जरूरत होगी पढ़ लेंगे, की विचारधारा के फलस्वरूप पुस्तकीय ज्ञान पुस्तकों में ही सिमटकर रह जाता है, जीवन की निधि नहीं बनता है। जिस समुदाय में ज्ञान जीवन से जीवन तक, व्यक्ति से व्यक्ति तक बहता है वही समुदाय ज्ञान की धारा को सतत् प्रवाहित रख पाता है। पारस्परिक अध्ययन से विनय श्रुत एवं प्रज्ञा का जो विकास होता है वह विकास मात्र पुस्तकों के सहारे होना असंभव प्रायः है। वैसे तो आचार्यश्री चातुर्मास आदि प्रसंगों में उपस्थित साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं को आगम एवं आगमोत्तर ग्रन्थों की वाचना प्रदान करते ही थे, उसी को विशेषतः प्रवृत्त करने के लिए एक पारस्परिक अध्ययन की योजना बनाई, जिसके तहत कुछ साधु-साध्वियों का सामूहिक रूप में लक्ष्यबद्ध दीर्घकालिक अध्ययन क्रम प्रवृत्त हुआ खिरकिया में ही आचार्यश्री ने इसकी शुरुआत की। छत्तीसगढ़ क्षेत्र आचार्य श्री नानेश की समय से ही पुरजोर विनती करता आ रहा था। चिरप्रतिक्षा के पश्चात् आचार्यश्री ने भोपाल में रायपुर का चातुर्मास घोषित किया एवं नागपुर में एक इंजीनियर मुमुक्षु को दीक्षा प्रदान करके छत्तीसगढ़ की कठिन यात्रा हेतु चरण बढ़ाये। छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में चातुर्मास हुआ। चातुर्मास में एवं उसके पश्चात् रायपुर के उपनगर शैलेन्द्रनगर में दीक्षा देकर आचार्यश्री मुंगेली पधारे एवं एक मुमुक्षु को दीक्षा दी।

चुनौतियों एवं कठिनाईयों से जूझना आचार्यश्री की रुचियों में से एक है। इस रुचि से परस्पर गुंथी हुई एक रुचि है नवीन राहों पर गति। पूर्वाचल की ओर आचार्यश्री के चरण बढ़े। उसमें इन दोनों रुचियों के सामंजस्य का भी कुछ प्रभाव था। नया, अनजाना, अपरिचित मार्ग, नए लोग, नई भाषा, नया आहार, नया मौसम- इन अनेक नवीनताओं के बीच एक चीज पुरानी थी वह थी शुद्ध संयम की साधना। संयम और शुद्धाचार आचार्यश्री को दीक्षा के पूर्व से ही प्रिय रहे हैं। परिस्थितियों के नाम पर संयम से समझौता संभव नहीं था। आचार्यश्री की आचार दृढ़ता से अनजान व्यक्ति कभी दबे स्वरों में चर्चा करते- गुरुदेव बंगाल जाएँगे तो शुद्ध संयम कैसे पलेगा, शुद्ध भिक्षा कैसे मिलेगी? आदि-आदि, पर जब विहारचर्या देखी गई तो परमाश्चर्य! बीस-पच्चीस-तीस कि.मी. के लम्बे-लम्बे विहार। कभी चावलों का मांड पीकर दिन निकालना, कभी ग्रामवासी अजैन अग्रवालों की श्रद्धा का उभार, कभी अनजान लोगों का तिरस्कार, मगर कदम रूके नहीं। सन्मार्ग पर बढ़े कदमों को भयभीत होकर पीछे खींचना आचार्यश्री ने सीखा न था। राउरकेला में दीक्षा देकर राँची होली चातुर्मास करके आचार्यश्री ने बंगाल की धरती पर कदम रखा एवं इतिहास प्रसिद्ध चण्डकौशिक की बांबी से लगभग मात्र दस किलोमीटर दूर सैंथिया गाँव में एक मुमुक्षु भाई को दीक्षा देकर ज्ञातानुसार भगवान द्वारा विचरे गए लाढ़ नामक अनार्य देश में (वर्तमान में बहरमपुर) पधारे। चातुर्मास हावड़ा में सम्पन्न हुआ। गंगा तीर से कुछ ही मीटर की दूरी पर विश्वप्रसिद्ध हावड़ा ब्रिज के समीप जूट मिल के विशाल प्रांगण के समीप बनी कॉलोनी के सामुदायिक भवन में आचार्यश्री विराजे। यह चातुर्मास क्षेत्रवासियों के लिए अद्भुत प्रेरणा बनकर आया। अनेक आत्माएँ धर्म के अभिमुख हुईं। चातुर्मास के पश्चात् कोलकाता-हावड़ा के विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए खिरकिया से

प्रारम्भ लगभग दो साल तक चले अध्ययन प्रकल्प की पूर्णता के पश्चात् आचार्यश्री का विहार कटक, भुवनेश्वर होकर पुनः छत्तीसगढ़ की ओर हुआ।

सामूहिक निर्णय सशक्त एवं परिणामदायक होते हैं। उनसे सदस्यों के निर्णय के प्रति समादर बढ़ जाता है। पारस्परिक चर्चाओं से अनेक नवीन तथ्य प्रकट भी होते हैं। नये-नये आयामों की दिशा भी प्रकट होती है। आचार्यश्री के मस्तिष्क में स्फुरणा पैदा हुई कि सम्प्रदाय के अनेक साधु-साध्वियों की एक बार सहउपस्थिति हो जाए तो अच्छा है। सम्प्रदाय के अधिकांश साधु-साध्वियाँ बहुत दूर हैं। मेरा भी संभव है आगे दक्षिण में निकलना हो जाए। पुनः मध्यप्रदेश, राजस्थान लौटने में काफी समय निकल जायेगा। उससे पूर्व ही एक बार सम्मिलन हो जाए। इतनी दूर से साधु-साध्वियों का पधारना एक कठिन कार्य था। लम्बे विहार, स्वास्थ्य की प्रतिकूलताएँ, मध्यवर्ती क्षेत्रों के परीषह कई बिन्दु विचारों में अवरोध उत्पन्न करने की कोशिश कर रहे थे। सफल व्यक्तियों एवं असफल व्यक्तियों में एक बहुत बड़ा अन्तर होता है कि सफल व्यक्ति अपने लक्ष्यों के मार्ग में आने वाले विघ्नों को पार करने हेतु संकल्पित एवं दृढ़ रहते हैं और वे अपने लक्ष्यगामी विचारों को कमजोर नहीं होने देते, जबकि असफल व्यक्ति अपने लक्ष्यों को अपने ही मन से शिथिल कर देते हैं। अवरोधों को वे मन ही मन विशाल विस्तार दे देते हैं एवं अपने लक्ष्य के प्रति अपने ही मने में विरोध उत्पन्न करने लगते हैं, जिससे संकल्प शक्ति में सुदृढ़ता नहीं आ पाती एवं जब स्वयं का संकल्प ही कमजोर हो तो कार्य सफल कैसे हो सकता है। आचार्य श्री राम संकल्प के धनी हैं। सामुद्रिक शास्त्र कहता है- 'सर्वं सत्त्वे प्रतिष्ठितम्' अर्थात् संकल्प शक्ति में ही सभी सिद्धियाँ निवास करती हैं। मन ही मन में निर्णय स्थिर हो गया। साधु-साध्वियों को समाचार संप्रेषित कर दिये गये। आसाम की धर्मप्रेमी जनता

आचार्यश्री के पधारने हेतु अति आग्रहभरा निवेदन प्रस्तुत कर रही थी, परन्तु भावी चिंतन परिषद को आकार देने हेतु आचार्यश्री ने छत्तीसगढ़ की दिशा ली एवं राजनांदगाँव में एक दीक्षा देकर अगला चातुर्मास दुर्ग हुआ। दुर्ग शहर की शांत एवं नीरव ऋषभनगर कॉलोनी में आचार्यश्री का चातुर्मास हुआ।

आगम में चार प्रकार के आचार्य बताए हैं। एक आचार्य शाल वृक्ष के समान एवं शिष्य परिवार भी शाल के समान, एक आचार्य शाल वृक्ष के समान एवं शिष्य परिवार एरण्ड वृक्ष के समान, एक आचार्य एरण्ड वृक्ष के समान एवं शिष्य परिवार शाल वृक्ष के समान, एक आचार्य एरण्ड वृक्ष के समान और शिष्य परिवार भी एरण्ड वृक्ष के समान। आचार्यश्री इनमें से प्रथम आचार्य की तरह स्वयं उत्तम शाल वृक्ष के समान उच्च व महान् हैं एवं तदनुसार साधु-साध्वी समुदाय भी शाल के समान अनेक गुणों से सम्पन्न होते हुए शोभित हो रहे हैं। आचार्यश्री का संकल्प दृढ़ हो तो साधु-साध्वियों का संकल्प दृढ़ क्यों न हो। मालिक का संकेत प्राप्त होते ही लम्बी दूरी, परीषहयुक्त मार्ग, अस्वस्थता आदि की परवाह किये बिना एक के बाद एक अनेक साधु-साध्वी छत्तीसगढ़ की ओर बढ़ते हुए दुर्गम पथों को पार करके दुर्ग पहुँच गये। चिन्तन परिषद प्रारम्भ हुई। विभिन्न विषयों पर पारस्परिक विचार-विमर्श एवं ठोस निर्णय लिये गये।

आचार्यश्री को जब युवाचार्य बनाया गया तब कुछ लोगों को ऐसा लगता था कि युवाचार्यश्री का प्रवचन उतना अच्छा नहीं है। प्रवचन के अच्छेपन की भी हर व्यक्ति की अपनी परिभाषा है। कोई बुलन्द आवाज को ही अच्छा मानता है, कोई अनेक दृष्टान्तों से सजे प्रवचन को, कोई गीतों की मधुर धुन बीच-बीच में आते रहने से खुश है तो कोई बॉडी लैंग्वेज पर दृष्टि टिकाए है। कोई प्रवचन के बीच दस-बारह आगम वाक्य सुने तो ही उसे वह प्रवचन समझ में आता

है और कोई घर-परिवार की बातों को सुनने का रसिक है। कोई दो-चार विदेशी दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों का नाम सुनकर रिचार्ज हो जाता है तो कोई मिडिया में उभर रही ताजा घटनाओं के स्पर्श से ही ताजा हो पाता है। कोई बीच-बीच में हंसाते-गुदगुदाते चुटकुलों की मांग करता है तो कोई हास्यविहीन गंभीर सैद्धान्तिक तथ्यों का विश्लेषण सुनकर ही तृप्त होता है। कोई शास्त्रों की व्याख्याओं में रस लेता है तो कोई शास्त्र का नाम सुनकर ही बिदक जाता है। कोई प्रवचन में बड़े कहलाने वाले श्रावकों, सेठों एवं नेताओं के प्रति व्यंग्यवाक्य सुनकर पुलकित हो उठता है तो कोई एक बार के लिए खून को गर्म कर देने वाले वेग भरे जोशीले शब्दों को सुनकर प्रभावित हो जाता है, आदि-आदि। तीर्थकर देवों की दृष्टि से निहारें तो पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तियों का निर्दोष पालन करने वाले मुनि के द्वारा सत्य महाव्रत एवं भाषा समिति की कसौटी पर खरे उतरने वाले वे जिनागमानुसारी वचन जिन्हें सुनकर श्रोता में सम्यक्दृष्टि भाव, श्रावकत्व एवं मुनित्व का भाव उत्पन्न हो या दृढ़ीभूत हो वही श्रेष्ठ प्रवचन है।

युवाचार्यश्री का युवाचार्य पद प्राप्ति के पूर्व के लगभग 17 चातुर्मासों में से बाद के एक-दो चातुर्मास (वह भी पूरा नहीं) में ही कुछ दिनों तक ही प्रवचन देने का प्रसंग बना। गोचरी (भिक्षाचर्या) एवं प्रवचन मुनि जीवन में ये दो कार्य ऐसे हैं जिनके प्रति मध्यस्थ मुनि मिलना दुर्लभ है। या तो कोई बहुत रुचि वाले होते हैं या बहुत अरुचि वाले। आचार्यश्री की गणना प्रवचन के प्रति अरुचि (लेकिन गोचरी के प्रति रुचि) वालों में ही थी। अनेक बड़ी दीक्षा पर्याय वाले प्रवचनकार मुनिराज थे। अतः ऐसी कोई जरूरत भी नहीं पड़ी कि प्रवचन देना ही पड़े। बहुत-सी बार आवश्यकता भी रुचि के निर्माण में बल देती है। युवाचार्य पद प्राप्ति के बाद आपको पुनःपुनः प्रवचन देना ही पड़ता। इतिहास के पन्नों पर दृष्टि घुमायें तो दुनिया में ऐसे महान् व्यक्ति हुए

है, जिन्होंने अपने जीवन में उसी विषय में विशिष्टता हासिल की जिस विषय में कभी जिन्हें कमजोर कहा जाता था। आइंस्टाइन, संस्कृत व्याकरण रचयिता पाणिनि इत्यादि ऐसे ही व्यक्ति हुए हैं। युवाचार्य पद के वक्त युवाचार्यश्री को प्रवचन में जितना युवाचार्यश्री प्रारम्भ से अनाकर्षक प्रतीत होने वाले प्रवचन समय के साथ अनुपम उच्चताओं व प्रभावकताओं को छूने लगे। युवाचार्य पद के बाद साधना के साथ ही साथ आपका प्रवचन भी सतत् निखार को प्राप्त होता गया। सन् 1994 में बीकानेर में व्यसनमुक्ति के आह्वान पर दिया गया प्रवचन इतना प्रभावक था कि कई श्रावकों ने अमुक-अमुक संख्या में लोगों को व्यसनमुक्त करने का संकल्प ले लिया। कुछ ही वर्षों में वह संख्या एक लाख से भी अधिक पहुँच गई, जिन्होंने लिखित रूप में आजीवन व्यसनमुक्त रहने की प्रतिज्ञा की। इनमें अनेक कैदी, स्कूली बच्चे, पुलिस वाले एवं मांसाहारी परिवारों के लोग शामिल हैं। इस व्यसनमुक्ति के कार्य को आज भी संघ गति दे रहा है।

आचार्यश्री अनुभूत सत्य के उपदेशक हैं। सरल भाषा में आप मन एवं जीवन की गहरी गुत्थियों का समाधान प्रस्तुत कर देते हैं। आज जब आप प्रवचन फरमाते हैं तो श्रोता मन्त्रमुग्ध से होकर उस वाणी के रस में डूब जाते हैं। दुर्ग चातुर्मास के प्रथम श्रावण मास की घटना है। आचार्यश्री नित्य की भाँति आगम की गाथाएँ एवं आनन्दघनजी तीर्थकर स्तुति का संगान करने के उपरान्त प्रवचन फरमा रहे थे। प्रवचन में भावधारा का विषय चल पड़ा। आचार्यश्री स्वयं भावों में डूबकर तत्त्व विश्लेषण कर रहे थे एवं संयम का विषय आया तो प्रवचन में ही एक और फिर दूसरे व्यक्ति थे मध्यप्रदेश के भूतपूर्व गृहमंत्री श्री हिम्मतजी कोठारी के बड़े भ्राता रतलाम निवासी श्री श्रीचंदजी कोठारी, जो संयम लेने हेतु खड़े हो गये। प्रवचन सभा में उपस्थित उनकी धर्मपत्नी से आचार्यश्री ने पूछा तो उन्होंने कहा कि

गुरुदेव मेरे तो अंतराय देने का त्याग है। तुरंत दीक्षा का अनुमति-पत्र प्रस्तुत कर दिया और श्रीचंदजी कोठारी सामायिक के वेश में ही थे, उन्होंने घड़ी आदि खोल दी एवं वहीं आचार्यश्री ने श्री श्रीचंदजी कोठारी को दीक्षा दे दी। इस प्रकार का अद्भुत दृश्य भगवान महावीर के समय में देखा जाता था। पिछले कई दशकों, सदियों में ऐसी कोई घटना देखी-सुनी नहीं गई कि प्रवचन सभा में अचानक किसी व्यक्ति ने खड़े होकर दीक्षा ली हो। आचार्य श्री राम के भव्य आभामण्डल एवं दिव्य देशना का ही यह अभौतिक चमत्कार था।

दुर्ग में समय-समय पर कुछ अन्य दीक्षाएँ भी हुईं। इस प्रकार चिन्तन परिषद् एवं अन्य दीक्षाएँ भी हुईं। इस प्रकार चिन्तन परिषद् एवं अन्य अनेक आध्यात्मिक उपलब्धियों से भरे चातुर्मास को पूर्ण कर आचार्यश्री रायपुर में चैन्नई निवासी एम.बी.बी.एस. डॉक्टर आदि को दीक्षा देकर बस्तर पधारे। जगदलपुर में तीन दीक्षाएँ देकर आचार्यश्री होली चातुर्मास हेतु विशाखापट्टनम् पधारे। दक्षिण की जनता अपनी वर्षों की भावनाओं की पूर्णता की आस लगाए बैठी थी एवं विशाखापट्टनम् आ आने पर विश्वास भी था कि आचार्यश्री का चातुर्मास दक्षिण भारत में ही होगा, लेकिन फिर एक बार आचार्यश्री ने लोगों के अंदाज को गलत सिद्ध करते हुए चातुर्मास राजनांदगाँव किया। उसके बीच दिल्लीराजहरा एवं बालोद में दीक्षा प्रसंग भी था।

पूवाचार्यों ने समय-समय पर आगमों पर कुछ कार्य किया है। आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा., आचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. एवं आचार्य श्री नानेश के समय में भी आगम विषयक अनुसंधान की योजनाएँ बनीं किन्तु विस्तृत रूप से कार्य नहीं हो पाया। राजनांदगाँव चातुर्मास में आचार्यश्री ने आगमानुसंधान कार्य की नए सिरे से शुरूआत की। पूरे चातुर्मास में वह कार्य प्रायः सतत् गतिशील रहा।

राजनांदगाँव चातुर्मास पूर्ण कर आचार्यश्री दीर्घ विहार करते हुए केशकाल पधारे एवं वहाँ की निवासिनी एक मुमुक्षु बहिन को दीक्षित करके पुनः दुर्ग पधारे, जहाँ भी एक दीक्षा हुई। दुर्ग में ही अपने हैदराबाद होली चातुर्मास की आगारों सहित स्वीकृति प्रदान की, जिससे दक्षिण की राह स्पष्ट होने लगी। मानपुर दीक्षा देकर जंगल के मार्ग से होते हुए आचार्यश्री विदर्भ के क्षेत्रों को स्पर्शते हुए हैदराबाद पधारे। होली चातुर्मास के अवसर पर इतनी कठोर क्रिया एवं फिर भी इतना विशाल जनसमुदाय देखकर हैदराबाद के लोग दांतों तले अंगुली दबाने लगे। हैदराबाद के ज्ञात इतिहास में पहली बार पाँच दीक्षाओं का प्रसंग बना। अक्षय तृतीया भी हैदराबाद में सम्पन्न हुई। अब तक के विहारों में से सम्भवतः कठिनतम विहार करते हुए तदनन्तर आन्ध्रप्रदेश के अजैन ग्रामों को एक के बाद एक पार करते हुए आचार्यश्री ने चैन्नई चातुर्मास हेतु तमिलनाडु में प्रवेश किया। चैन्नई की भक्तिविभोर जनता वर्षों से आचार्य-प्रवर का पलक पावड़े बिछाकर इंतजार कर रही थी। आचार्यश्री के पदार्पण से सम्पूर्ण दक्षिण भारत उत्साहित था। चैन्नई का चातुर्मास का दृश्य कुछ निराला ही था। प्रवचन स्थल हेतु लगभग 1-1 किमी. रोज आना-जाना होता था। नित्य प्रति सहस्राधिक जनता प्रवचनों का लाभ लेती। तपस्याएँ भी बहुत हुईं। रायपुर चातुर्मास से ही अनेक गृहस्थ भी कायक्लेश तप हेतु मांगीलालजी भूरा आदि गृहस्थों से लोच करवाते थे। प्रत्येक चातुर्मास में लोच कार्यक्रम चलता। इस चातुर्मास में तो 384 गृहस्थों ने लोच करवाकर एक नया ही कीर्तिमान बना दिया। प्रतिदिन नौ की तपस्या के प्रत्याख्यान अर्थात् नौ की लड़ी रायपुर चातुर्मास से ही हर चातुर्मास में चल रही थी, जो यहाँ भी गतिशील रही। उससे पूर्व इंदौर में अठाई के प्रत्याख्यान होते थे। कार्तिक शुक्ला पंचमी को तीन भाईयों एवं चार बहिनों की दीक्षाएँ सम्पन्न हुईं। चातुर्मास पश्चात् भी आचार्यश्री के चैन्नई अनेक उपनगरों

में धर्म प्रभावना करते हुए विचरणशील रहे। अक्षय तृतीया के पश्चात् पुनः चैन्नई में चार भाईयों व एक बहिन, इस प्रकार कुल पाँच दीक्षाएँ हुई। इन्हीं पाँच में से एक थे आचार्यश्री के संसारपक्षीय अग्रज श्री मांगीलालजी भूरा एवं साथ ही उनके पुत्र श्री शांतिलालजी।

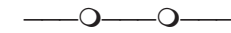
बैंगलोर संघ चैन्नई चातुर्मास के बाद अपने यहाँ चातुर्मास करने की पुरजोर विनती कर रहा था। मन ही मन में आश्वस्त-सा भी था कि चातुर्मास हमारे यहाँ ही होगा, लेकिन आचार्यश्रीजी की दृष्टि मदुरान्तकम् जैसे छोटे-से गाँव पर केन्द्रित हो गई, जहाँ जैन समाज के लगभग मात्र 40 घर हैं। आचार्यश्री हमेशा से ही कोलाहल से दूर एकान्तप्रिय रहे हैं। शासन की आवश्यकता को देखते हुए आपने कई बड़े शहरों में भी चातुर्मास सम्पन्न किया किन्तु आपकी आन्तरिक रूचि ग्राम्य जीवन के प्रति ही रही है।

आचार्य श्री राम इस युग के अद्भुत व्यक्तित्व हैं। तप कर खिले कुन्दन के समान आपश्री का जीवन संयम एवं तप की स्वर्णिम आभा से दैदीप्यमान है। हजारों की अनन्य भक्ति एवं श्रद्धा केन्द्र होने पर भी सहज, सरल एवं निराभिमान व्यक्तित्व। हाँ, भीड़ से अरूचि है, एकान्त में चिन्तन, मनन, लेखन की प्रियता। अमीर-गरीब के प्रति एक समान भाव। संघ के नेता एवं सामान्य सदस्य के प्रति एक-सा भाव। लाग-लपेट, घुमाव-फिराव, चिकनी-चुपड़ी बातें करके खुश रखने की वृत्ति से कोसों दूर, पारदर्शी जीवन भीतर-बाहर की एकरूपता। वाणी कुछ खरी-खरी लेकिन भीतर के वात्सल्य से भरी। विरोधी के प्रति भी वही वत्सलता, उदारता, मस्त हस्ती-सी मनमोहक दृढ़ गति...। सेवा तो कूट-कूट कर भरी है। आचार्य होने पर भी छोटे से छोटे काम के प्रति भी न सिर्फ तत्परता बल्कि प्रवृत्ति। असत्य एवं माया के प्रति कुछ तीखे तेवर। छोटा हो या बड़ा किसी को कर्तव्य बोध देने में संकोच नहीं। सामने वाले की श्रद्धा मुझ पर बनी रहे अतः

इससे मीठा बोलूँ, ऐसे भाव से सर्वथा दूर। हाजिरजवाब, मेधा की तीव्रता, धुन के पक्के, संकटों में साहसी, बहुत दूर की दृष्टि, कम से कम सहयोग लेकर अधिक से अधिक सहयोग देने की सतत् सक्रियता। आचार्य श्री नानेश की कृपा किरणों से प्रकाशित, आत्मसाधना की वर्धमान ज्योति से ज्योतिर्मय, संघ के पुरोध, संघ के सारथी, आठ आचार्यों का एक में दर्शन हो ऐसे व्यक्तित्व सम्पन्न आचार्यप्रवर श्री राम एवं साधुमार्गी की इस अद्वितीय, अनुपम, अप्रतिम, अनुत्तर परम्परा को अंजलिबद्ध हो, नत्शीस हो, भावपूर्ण अनन्त प्रणतियाँ।

णमो आयरियाणं

प्रिय मित्रों! पढ़े जाते हुए अक्षरों से निकलती भाव रश्मियों से अपने हृदयपट पर आप एक गौरवपूर्ण अतीत से जुड़े जिस दैदीप्यमान वर्तमान का चित्र अंकित करने जा रहे हैं, उनसे अपने अन्तर को ज्योतिर्मय बनाना। इन महापुरुषों के जीवन रत्नाकर में गहरे छिपे हुए कुछ विशिष्ट गुणरत्नों से अलंकृत करना, इन गुणों को आत्मसात् करना एवं अनन्त मुक्ति सुख का स्वामी बनने की दिशा में चरणों को गति देना।



सेवं भंते! सेवं भंते!

## गृहस्थ धर्म भाग-1

गृहस्थ धर्म भाग-1 का विषय श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर द्वारा प्रकाशित “श्री जवाहर किरणावली गृहस्थ धर्म भाग-1” पुस्तक (संस्करण 2006 या इसके पश्चात् प्रकाशित) देखें।